स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–21, अंक–5, वैशाख–ज्येष्ठ 2070, मई 2013

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण कथा

– /4

राष्ट्रीय परिषद् बैठक (इन्दौर)

पारित प्रस्ताव–1, 2, 3 /7

एफडीआई : प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश, देश की गुलामी की पहली सीढ़ी – डॉ. धीरेन्द्रनन्द /10

कृषि

अब छोटे किसानों के पेट पर लात
– देविन्दर शर्मा /12

श्रमिक

मुनाफे में कंपनियां मुसीबत में मजदूर
– अभिषेक रंजन सिंह /15

बेरोजगारी : रोजगारविहीन विकास की त्रासदी
– डॉ. अश्विनी महाजन /18

सामयिकी : गंगा की चिंता का दिखावा
– राजेन्द्र सिंह /20

आपसी रिश्ते

भेड़ियों के बीच सिंह की मौत
– जवाहरलाल कौल /22

अर्थव्यवस्था

महंगाई की दवाई बनाम आरबीआई
– आलोक पुराणिक /24

समीक्षा : सोने व चांदी में मंदी अस्थाई,
रोटी के मूल्यों में तेजी स्थाई
– डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल /26

विचार–विमर्श : सरकारी खर्च की गुणवत्ता सुधारिये
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /29

मुद्दा

ग्रामीण विकास की छद्म तस्वीर
– पंकज चतुर्वेदी /31

तालाब

बुरा समय आ गया है. . .
– अनुपम मिश्र /33

पाठकनामा/2, रपट/35

पाठकनामा

भगवान भरोसे चल रहा देश. . .

लगता है भ्रष्टाचार अब हमारे मंत्रियों के खून में ही समा गया है। एक भ्रष्टाचार खत्म होता नहीं है कि दूसरा आकर खड़ा हो जाता है। एक तरफ सुप्रीम कोर्ट ने कोयला ब्लॉक आवंटन घोटाले की जांच में केन्द्र सरकार जिस तरह लीपापोती कर रही थी उस पर फटकार लगाई, तभी रेल मंत्री पवन बंसल का भांजा रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया। सूत्रों के अनुसार यह राशि पवन बंसल को ही दे जानी चाहिए थी। फिलहाल इस पर सीबीआई की जांच चल रही है लेकिन सच सामने आते–आते शायद काफी समय लग जाए।

आज दुनिया भर के देशों में केन्द्र सरकार की हंसी उड़ाई जाती है और यह मौका स्वयं केन्द्र सरकार ने ही उपलब्ध कराया है। यूपीए सरकार घोटालों को दबाने पर लगी हुई है। देश की जनता ने जिन्हें शासन दिया, वही जनता के लिए अब घोटालों का सिरदर्द बनती जा रही है। अब सरकार अदालत से भी छल करने का दुस्साहस कर रही है। जनता कैसे इन मंत्रियों पर यकीन करें कि यह सरकार घोटालों की निष्पक्ष जांच करवाएगी। एक तरफ से देखा जाए जहां सरकार जनता की गाढ़ी कमाई को घोटालों से लूट रही है वही दूसरी तरफ हमारा भारत देश अब भगवान भरोसे चल रहा है।

– राकेश पाण्डेय, गली नं. 8, करतार नगर, दिल्ली

सभी धर्मों से बड़ा देश

कितनी शर्मनाक बात है कि हमारे देश के एक सांसद ने वंदेमातरम् गान पर संसद से बाहर चले गए। जब उनसे पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि यह उनके मजहब के खिलाफ है और हर बार ऐसा ही करते रहेंगे। सुनकर बड़ा दुख हुआ। माना धर्म आदमी को जोड़ता है लेकिन जब सभी धर्म मिलकर एक देश बनाते हैं तो फिर धर्म से बड़ा देश होता है। इसके अतिरिक्त जिस भूमि पर आपको सम्मान, रोटी और रोजगार मिले तो भी धर्म से बड़ा देश होता है। देश सर्वोपरि है धर्म बाद में।

देश की अवहेलना करने का उदाहरण हम अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान को देख सकते हैं। कट्टरपंथों ने पाकिस्तान को देश न बना कर आतंकवादी देश बना दिया है। वहां कट्टरपंथी मजहब के कारण हर आदमी आतंकवाद के साये में जी रहा है।

वंदेमातरम् के गान का अपमान करने वाले सांसद पर कम से कम पांच वर्ष का कठोर दण्ड देना चाहिए जिससे कोई फिर से ऐसा काम न करें।

– मनु रावत, स्कूल ब्लॉक, शकर पुर दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्कः 15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740

IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

यह देखकर रेलवे के 14 लाख स्टाफ की मनोदशा का क्या होगा कि उनका शीर्ष प्रबंधन बिकाऊ है।

– चेतन भगत

गांधी जी ने जिस कांग्रेस को देश को अंग्रेजों से आजाद कराने के लिए क्रांति का हथियार बनाया था वही कांग्रेस आज भ्रष्टाचारियों की मंत्रियों की फौज बन गई है।

– मुख्तार अब्बास नकवी

सीबीआई का काम ऐसा है कि उसे सरकारी अधिकारियों से मेलजोल नहीं करना चाहिए और सिर्फ छानबीन के लिए मुलाकातें होनी चाहिए जो सच्चाई को सामने लाने के लिए हो।

– सुप्रीम कोर्ट

सरबजीत मामले में सरकार ने साफ कर दिया है कि उसकी जिम्मेदारी सरबजीत सिह को बचाना नहीं, बल्कि अंबानी, वाड्रा और भ्रष्टाचार को बचाना है।

– अरविन्द केजरीवाल

यूपी सरकार द्वारा हूजी के तारिक कासमी के खिलाफ मुकदमा वापस लेने की अपील से आतंकियों के हौसले बढ़ जाएंगे और पाकिस्तान की तरह यूपी भी उनके लिए सुरक्षित ठिकाना बन जाएगा।

– उमा भारती

भाजपा की सफलता का समय अब आ गया है। कभी लंबी छलांग लगानी होती है तो चार कदम पीछे हटना पड़ता है।

– राजनाथ सिंह

संपादकीय

सप्रंग सरकार के कारनामें: महंगाई में हम सबसे आगे

सावधान पूरे विश्व में एक बार फिर से खाद्यान्न संकट आने वाला है और भारत सरकार की नीतियों के कारण देश इसका सबसे अधिक परिणाम भुगतने वाला है। अंतरराष्ट्रीय एजेंसियां चिल्ला चिल्ला कर कह रही हैं कि यदि समय रहते उचित कदम नहीं उठाया गया तो वर्ष 2013 में खाद्यान्नों की कीमत बेकाबू हो जाएंगी। सबसे खतरे की बात यह है भारत में भी खाद्यान्न उत्पादन कम रहने वाला है। वर्ष 2013–14 के सीजन में गेहूं उत्पादन 9 करोड़ मिट्रीक टन ही रहने का अनुमान है जबकि पिछले साल हमारा गेहूं उत्पादन 9.488 करोड़ मिट्रीक टन था। हालांकि पिछले कुछ दिनों में मुद्रा स्फीति की दर में मामूली सी कमी आई है, पर सप्रंग सरकार की नीतियां ऐसी हैं जिसके कारण कभी भी स्थिति नियंत्रण से बाहर हो सकती है। खाद्यान्न में फ्युचर कारोबार की अनुमति और कृषि योग्य भूमि का तेजी से व्यावसायिक एवं अन्य गतिविधियों के लिए इस्तेमाल खाद्यान्न संकट को बढ़ाने में बड़ी भूमिका निभाएगा। विश्व बैंक ने भी चेतावनी जारी की है कि खाद्यान्नों की ऊंची और अस्थिर कीमत जारी रहेगी। सरकार के हाल के कदम महंगाई को बेकाबू करने वाले साबित होंगे। लगातार यह खबर आ रही है कि पेट्रोल की तरह अब डीजल के मूल्य को भी बाजार आधारित बना दिया जाएगा। चीनी के मूल्य को नियंत्रित करने के बजाय अनियंत्रित कर दिया जाएगा। कई बार हमारी सरकार ने महंगाई का ठीकरा अंतरराष्टीय सट्टा बाजार में बढ़ती कीमतों के सिर फोड़ा है। जबकि भारत में महंगाई बढ़ने के अपने आतंरिक कारण ज्यादा हैं। ब्रिक्स देशों जिसमें ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका शामिल हैं, के उपभोक्ता सूचकांक को देखें तो अकेले भारत ही है जिसने अपनी मुद्रा स्फीति की दर काबू में नहीं रखी है। भारत में मुद्रा स्फीति की उच्चतम दर 11.17 फीसदी रही, जबकि चीन में 1.9 फीसदी। दक्षिण अफ्रीका में यही दर अधिकतम 5.75 फीसदी रही और रूस में 6.54 फीसदी। अपने वाणिज्य मंत्रालय का ही यह आकड़ा है कि थोक मूल्य में वर्ष 2012–2013 के दौरान 11.88 फीसदी की वृद्धि हुई। खुदरा बाजार में तो यह वृद्धि और ज्यादा रही।

अंतरराष्ट्रीय बाजार के असर को कम करने के लिए यह जरूरी था कि भारत अनाज उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर और स्वयंसुरक्षित हो जाता, पर इसके लिए कोई भी नीति सरकार नहीं बना रही है। यही नहीं सट्टेबाजों से उपभोक्ताओं को बचाने के बजाय आलू प्याज तक का फ्यूचर कारोबार खोल दिया गया है। विश्व बाजार की हालत देख कर यह आवश्यक है कि कम से कम गेहू, चावल, चीनी और आलू प्याज जैसे अति आवश्यक खाद्यान्नों व सब्जियों पर तो फ्यूचर कारोबार रोकती।

संभावित खाद्यान्न संकट के कई कारण गिनाए जा रहे हैं, उनमें प्रमुख हैं खेती के लायक भूमि का गैर कृषि में तेजी से बढ़ता उपयोग, खाद्यान्न बाजार में सट्टेबाजी का हावी होना, सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में उचित निवेश न करना और किसानों का खेती से मोहभंग होना। कुछ अतंरराष्ट्रीय कारण भी हैं जिससे खाद्यान्न संकट की आशंका बढ़ गई है। कहा जा रहा है कि इस बार अमरीका, रूस और उक्रेन जैसे देशों में भयंकर सूखा पड़ा है। यही नहीं अमरीका और यूरोप के देशों में अनाज या अन्य खाद्य फसलों के बजाय डीजल की खेती ज्यादा हो रही है। अमरीका ने मक्का के किसानों को डीजल की खेती के लिए जब से सब्सिडी देना शुरू किया है तब से और स्थिति खराब हो गई है। अमरीका खुद कभी मक्का का सबसे बड़ा निर्यातक था अब वह बायोडीजल की खेती के कारण मक्के के बाजार से ही बाहर आ रहा है। पर खाद्यान्नो की कीमत में आग लगाने के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार सट्टेबाजी और फ्युचर कारोबार है। और इस कारोबार में कई बहुराष्ट्रीय कंपनियां जबर्दस्त मुनाफा काट रही हैं। बार्कलेज बैंक ने खुद स्वीकार किया है उसने वर्ष 2012 में खाद्य बाजार की सट्टेबाजी से 489 लाख डॉलर कमाएं हैं। यही नहीं गोल्ड मैन साच्स ने 2012 में 40 करोड़ डॉलर सट्टेबाजी से कमाया। अंकटाड में अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि सट्टेबाजों ने पिछले साल वास्तविक अनाज उत्पादन के 20 से 30 गुना अधिक का फ्यूचर कारोबार किया। यही कारण है कि पूरी दुनिया में खाद्यान्नों की कीमत बढ़ रही है। भारत इससे अछूता नहीं रहा है।

मंच द्वारा आयोजित खुदरा एफ.डी.आई. विरोधी जुटान का संकल्प

विदेशी कंपनियों को भगाए बिना नहीं थकेंगे नहीं रूकेंगे

भागीदार

● किसान ● मजदूर ● हॉकर्स ● कृषि मंडी ● व्यापारी ● ट्रांसपोर्टर ● लघु उद्यमी ● विद्यार्थी एवं ● सकल समाज के प्रतिनिधि

श्री अरुण ओझा (राष्ट्रीय संयोजक) खुदरा एफडीआई विरोध जुटान में आए प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए

■ विक्रम उपाध्याय

आर्थिक आजादी के खिलाफ लड़ाई का बिगुल बज चुका है। विदेशी कंपनियों को देश के खुदरा व्यापार क्षेत्र से निकाल बाहर फेंकने का लक्ष्य निश्चित किया जा चुका है। अब यह संग्राम तभी रुकेगा जब लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी। ये संकल्प 7 मई को दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब के विशाल सभागार में स्वदेशी जुटान के बैनर तले जुटे किसान, मजदूर, हाकर्स, कृषि मंडी, व्यापारी, परिवहन, लघु उद्योग व समाज के सैकड़ों नेताओं और प्रतिनिधियों ने लिए हैं, जिन्हें इस बात का अहसास है कि भारत सरकार देश की आर्थिक संप्रभुत्ता को विदेशी कंपनियों के पास गिरवी रख चुकी है।

7 मई को स्वदेशी जुटान में अपनी बात रखते हुए राज्य सभा में विपक्ष के व भाजपा के वरिष्ठ नेता अरुण जेटली ने कहा कि सप्रंग सरकार देश की सत्ता यूरोप के हाथों और बाजार चीन के हवाले कर देना चाहती है। उन्होंने कहा कि सरकार के इस कदम से देश एक दिन ''सेल्स गर्ल्स व सेल्स ब्यावज'' का देश बन कर रह जाएगा। उन्होंने कहा कि सरकार ने खुदरा व्यापार के क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को प्रवेश देने की अनुमति के लिए जितने भी फायदे गिनाए हैं सब झूठे हैं। सरकार कहती है कि विदेशी कंपनियों के आने से देश के खाद्यान्न एवं फल सब्जियों की बर्बादी रूकेगी, हकीकत है कि अमरीका में इनके रहते हुए भी 40 फीसदी फसल बर्बाद हो रही है। यह तर्क तो और हास्यस्पद लगता है कि विदेशी कंपनियों के आने से किसानों और बाजारों के बीच से बिचौलिए हट जाएंगे, क्योंकि वालमार्ट खुद एक बहुत बड़ी बिचौलिया कंपनी है। स्वदेशी जागरण मंच से वर्षों जुड़े भाजपा के महासचिव पी. मुरली धर राव ने कहा कि देश के खुदरा व्यापार में विदेशी कंपनियों को आने देने का मतलब लाखों किसानों, मजदूरों और दुकानदारों के स्वाभिमान और उनकी आर्थिक आजादी को बेचना। उन्होंने कि खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी देना देश के खिलाफ एक षडयंत्र है। कुछ लोग इस योजना में हैं कि देश के करोड़ों किसानों की खेती उनसे छीन कर कुछ कंपनियों के हवाले कर दिया जाए और लाखों छोटे व्यापारियों और दुकानदारों द्वारा वर्षो से संजो रहे खुदरा व्यापार को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले कर दिया जाए। उन्होंने सरकार को दोहरी नीति का खुलासा करते हुए कहा कि एक तरफ तो संसद के भीतर सरकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पक्ष में भाषण करती है नीतियां बदलती है और उन्हें हर तरह की सुविधा देने का वायदा करती है वहीं दूसरी तरफ संसद के बाहर आम आदमी की चिंता का नाटक करती है। उन्होंने कहा कि स्वदेशी और वालमार्ट के बीच छिड़ी इस लड़ाई में अंततः स्वदेशी की ही जीत होगी।

वरिष्ठ चार्टर्ड एकाउंटेंट व स्वदेशी विचारक श्री एस गुरुमूर्ति ने कहा कि कांग्रेस को यह मालूम है कि अब वह सत्ता में दुबारा नहीं आएगी। इसलिए वह यह तमाम फैसले कर रही है जिससे कुछ लोगों का भला हो जाए। उन्होंने कहा कि खुदरा व्यापार के क्षेत्र

में विदेशी कंपनियों के आने से एक क्षेत्र में असर नहीं होगा, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था पर इसका व्यापक प्रभाव देखने को मिलेगा। उन्होंने कहा कि किसान, दुकानदार और मजदूर तो रोजगार एवं कृषि लाभ से वंचित होंगे ही, बल्कि उपभोक्ताओं को भी भारी हानि होगी। इस कार्यक्रम में स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय संयोजक श्री अरुण ओझा ने मंच से एलान किया कि अब यह संघर्ष तभी रूकेगा जब देश से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बाहर कर दिया जाएगा। मंच के वरिष्ठ नेता व राष्ट्रीय संगठक श्री कश्मीरी लाल ने भी जुटान में आए प्रतिनिधियों को खुदरा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के आगमन से होने वाले नुकसान के प्रति चेताया। इस कार्यक्रम में आए समस्त प्रतिनिधयों, वरिष्ठ नेताओं और महत्वपूर्ण वक्ताओं के विचारों को समायोजित करते हुए मंच की तरफ स्वदेशी विचार मंडल प्रमुख डॉ अश्विनी महाजन ने घोषणा पत्र तैयार किया और सबके सम्मुख कार्यक्रम एवं आंदोलन का ऐलान किया।

इस जुटान का उद्देश्य और आए लोगों का संकल्प अति महत्वपूर्ण इसलिए है कि इस बार इस विषय पर पूरे देश और लगभग 150 संगठनों के लोग उपस्थित हुए। इनमें प्रमुख थेः– स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक श्री भगवती प्रकाश शर्मा, भारतीय जनता पार्टी के महासचिव धर्मेन्द्र प्रधान, पूर्व केंद्रीय मंत्री श्रीमती रीता वर्मा व संतोष गंगवार, भारतीय मजदूर संघ के क्षेत्रीय संगठन मंत्री पवन कुमार, भारतीय उद्योग व्यापार मंडल के अध्यक्ष श्याम बिहारी मिश्र, एफडीआई वाच के श्री धर्मेन्द्र, लघु उद्योग भारती के श्री जितेन्द्र गुप्त, हाकर्स एसोसिएशन की तरफ से सौदान सिंह और आर वी. सिंह राजपूत आदि। इसके अलावा मंच के क्षेत्रीय संयोजक और बड़ी संख्या में स्वदेशी कार्यकर्ता व अंदोलनकारी भी उपस्थित हुए। कार्यक्रम में लगभग 50 सांसदों एवं पूर्व सांसदों ने भाग लिया। अवकाश प्राप्त लेफ्टिनेंट जनरल एन. एस. मलिक, भारतीय किसान यूनियन के महासचिव युद्धवीर सिंह, प्रमुख चिंतक शेखर स्वामी आदि की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रही। दिनभर चले इस कार्यक्रम का संचालन क्षेत्रीय उत्तर क्षेत्र के सहसंयोजक श्री दीपक शर्मा 'प्रदीप', क्षेत्रीय संयोजक श्री किशन कुमार शर्मा, राजस्थान के संयोजक श्री भगीरथ चौधरी एवं झारखण्ड के श्री बंदे शंकर ने किया।

जुटान से पहले खुदरा व्यापार क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के आगमन के दुष्प्रभाव से संबधित एक प्रपत्र भी तैयार किया गया जिसमें विस्तृत रूप से लोगों को बताने की कोशिश की गई है कि आखिर खुदरा व्यापार क्षेत्र. से देश को नुकसान क्या होने वाला है। प्रस्तुत है उस प्रपत्र का सार अंश :–

खुदरा एफ.डी.आई. की समस्या

खुदरा में एफ.डी.आई. यानि विदेशी कंपनियों के प्रवेश के कारण देश का खुदरा और थोक व्यापार ही नहीं, पूरी अर्थव्यवस्था खतरे में हैं। सरकार के तर्क कि किसानों से ये कंपनियां सीधी खरीद करेंगी, और बिचौलियें समाप्त होंगे तो किसान को उसकी उपज का ऊंचा मूल्य मिलेगा इसके साथ ही उपभोक्ताओं को सस्ता सामान भी मिलेगा, पूरी तरह झूठा और विदेशी कंपनियों के गढ़े हुए हैं। सच्चाई है कि दुनिया भर में ये कंपनियां किसानों का शोषण कर रही हैं, ऊंची कीमत तो दूर उनकी उपज की सही कीमत भी नहीं मिल रही है। फसले बर्बाद हो रही हैं और उपभोक्ताओं से भारी कीमत वसूली जा रही है।

जो लोग यह दावा कर रहे हैं कि खुदरा व्यापार के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से देश में रोजगार के अवसर बढ़ेगे उन्हें शायद मालूम नहीं कि ये कंपनियां अपने सारे कार्यकलाप मशीनों के माध्यम से करती हैं, मानव श्रम का उपयोग न्यूनतम होता है। एक वालमार्ट के स्टोर में औसत 272 लोग काम करते है, जबकि एक वालमार्ट का स्टोर खुलने से उसके आस पास के 3–4 किलोमीटर के दायरे में किसी दुकानदार या हॉकर का रोजगार नहीं बचता जिससे उसमें लगे सैकड़ों मजदूर व किसान बेरोजगार हो जाते हैं। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां उनके व्यापार को चंद दिनों में ही हस्तगत कर लेती हैं।

यह कहना कि खुदरा व्यापार के क्षेत्र में आने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्थानीय उत्पादनों व उपजों को खरीदेंगी और भी थोथा तर्क है। वास्तविकता यह है कि ये कंपनियां चीन और अन्य देशों से सामान खरीद कर अपने स्टोरों में बेचती हैं। गौरतलब है कि वालमार्ट दुनिया की सबसे बड़ी चीनी माल खरीदने वाली कंपनी है। वालमार्ट के स्टोरों में 90 प्रतिशत सामान चीन द्वारा निर्मित होता है। इसलिए खुदरा में विदेशी कंपनियों के आने से देश के लघु उद्यम समाप्त हो जाएंगे। यही नहीं खेतों व मंडियों पर पूरी तरह आश्रित हजारों ट्रांसपोर्टर भी अपना व्यवसाय खो देंगे, क्योंकि ये कंपनियां अपनी ट्रांसपोर्ट व्यवस्था अपने बड़े एयर कंडीशन ट्रकों के द्वारा खुद ही करती हैं। इसलिए देश का ट्रांसपोर्ट उद्योग भी भारी खतरे में आ गया है। सरकार देश के युवा वर्ग को यह कह कर तो लुभाती है कि हमें जनसांख्यिकी लाभ लेना है, लेकिन काम इसके उलट कर रही है। वे लोग जो शिक्षा के बाद खुद का व्यवसाय चलाना चाहते हैं वे भी रोजगार के अवसर समाप्त होने की आशंका से भारी चिंता में है। आज देश का हर किसान, हर मजदूर, व्यापारी, हॉकर, ट्रांसपोर्टर, लघु उद्यमी, विद्यार्थी और आम आदमी आक्रोश में है। मंच ने यह तय किया है आने वाले आम चुनाव मे इस मुद्दे पर जनसमर्थन प्राप्त करते हुए एफ.डी.आई. के समर्थक राजनीतिक दलों की घेराबंदी की जाएगी और देश भर में एफडीआई के खिलाफ व्यापक आंदोलन चलाया जाएगा।

जागो व्यापारी जागो

आज देश में 1 करोड़ 20 लाख छोटी–बड़ी दुकानों में लगे 4 करोड़ लोग हैं। इसके अलावा इससे भी अधिक रेहड़ी पटरी खोमचा लगाने वाले हॉकर हैं। 1 करोड़ से भी अधिक लोग थोक व्यापार में लगे हैं। दुनिया का अनुभव यह बताता है कि जहां–जहां इन कंपनियों द्वारा खुदरा व्यापार शुरू किया गया है, यानि इनके स्टोर खोले गएं, वहां–वहां छोटा व्यापारी रोजगार से बाहर होता गया। 1960–70 के दशक से जैसे ही इन कंपनियों का प्रावदुर्भाव अमरीका और यूरोप में हुआ,

वहां 80 प्रतिशत से ज्यादा बाजार इन कंपनियों के हाथ में चले गए। छोटे व्यापारियों को अपने दुकान और स्टोर बंद करने पड़े और वे रोजगार से बाहर हो गए। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भी लगातार इन कंपनियों का प्रादुर्भाव बढ़ने से लगभग 50 प्रतिशत व्यवसाय इन कंपनियों के हाथ में आ गया। ये कंपनियां अपने प्रतिद्वंदी छोटे दुकानदारों को बाजार से बाहर करने की रणनीति के तहत लागत से कम मूल्य पर सामान बेचने की रणनीति अपनाती हैं, जिसे प्रीडेटरी (हिंसक) कीमतें भी कहते हैं। इन कंपनियों की आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत होती है कि ये हजारों करोड़ों रूपए का नुकसान सहकर भी बाजार पर कब्जा कर लेती हैं। अत्यंत कमजोर आर्थिक स्थिति वाले व्यापारी इनकी प्रतिस्पर्द्धा में खड़े नहीं रह सकते। देश भर के व्यापारियों को आने वाले खतरों के बारे में जागरूक होना पड़ेगां। आन्दोलन को और तीव्र करना होगा।

जागो किसान जागो

सरकार का यह प्रचार कि इन कंपनियों के आने से बिचौलिये समाप्त हो जाएंगे और किसान को उसकी उपज का सही मूल्य मिलेगा बेमानी है और न तो किसी शोध पर आधारित है और न सर्वेक्षण पर, बल्कि भारत में आने को आतुर विदेशी कंपनियों के विज्ञापनो, और अमरीकी सरकार के दिए निर्देशों पर सरकार यह अनर्गल प्रलाप कर रही है। अच्छा होता यदि सरकार उन देशों के उदाहरणों का अध्ययन करती जहां जहां ये कंपनियां अपना कारोबार कर रही हैं। आंकड़े बताते हैं कि अमरीका में खाद्य पदार्थों पर कुल उपभोक्ता खर्च वर्ष 2000 में 833 अरब डालर से बढ़कर 2009 में 1200 अरब डालर तक पहुंच गया (यानि 377 अरब डालर की वृद्धि)। दूसरी ओर यदि खाद्य पदार्थों के विक्रय से कृषि आमदनी की बात करें तो वह इस दौरान 197.6 अरब डालर से मात्र 282 अरब डालर तक ही पहुच पाई। इससे स्पष्ट है कि खुदरा में संलग्न कंपनियां किसानों को अधिक से अधिक निचोड़ने का काम करती हैं। अमेरीकी सरकार के कृषि विभाग के अनुसार वर्ष 2000 से 2009 के बीच खाद्य खुदरा कीमतों के प्रतिशत के रूप में सब्जियों के लिये मिलने वाला हिस्सा 23 से 28 प्रतिशत और ताजे फलों के लिये मिलने वाला हिस्सा 25 से 30 प्रतिशत रहा।

यदि हम उन देशों के अनुभवों की, जहां ये बड़ी बहुराष्ट्रीय खुदरा कंपनियां कार्यरत हैं की तुलना भारत से करें तो ध्यान में आता है कि 1950 में अमेरीकी किसानों को उपभोक्ता व्यय का 40 प्रतिशत प्राप्त होता था, जो घट कर अब मात्र 25 प्रतिशत से भी कम हो गया है। अमरीकी किसानों को दूध की खुदरा कीमत का 45 प्रतिशत, अंडों का 41 प्रतिशत, मांस का 32 प्रतिशत ही मिलता है। भारत में (जहां छोटे दुकानदारों का प्रादुर्भाव है), दूध की खुदरा कीमत 34 रूपये प्रति किलो (अमूल) में से 26 रूपये प्रति किलो (76.5 प्रतिशत) और चीनी की खुदरा कीमत 35 रूपये प्रति किलो में से 22 रूपये (63 प्रतिशत) किसानों को प्राप्त होता है। यह सही है कि ढ़ांचागत सुविधाओं (भंडारण और शीतगृहों) के अभाव में, जिसके लिए सरकार स्वयं जिम्मेदार है, किसानों को सब्जियों और फलों के लिये अच्छी कीमतें नहीं मिल पाती, लेकिन मोटे तौर पर खुदरा का भारतीय मॉडल किसानों के लिये अमेरीकी मॉडल से कहीं ज्यादा लाभकारी है।

जागो मजदूर जागो

यही नहीं कि ये कंपनियां व्यापारियों और उनके साथ लगे कर्मचारियों को ही रोजगार से बाहर करेंगी, अन्य स्थानों पर भी मजदूर काम से बाहर होंगे। गौरतलब है कि जबसे ये कंपनियां अमरीका में आगे बढ़ी, विनिर्माण (मन्युफैक्चरिंग) क्षेत्र में संलग्न कार्मिकों (मजदूरों) की संख्या वर्ष 1979 में 195 लाख से कम होकर वर्ष 2011 में 118 लाख ही रह गई है। ऐसा इसलिए हुआ है कि ये कंपनियां अमरीका से सामान न खरीदकर चीन और अन्य देशों से खरीदने लगी हैं। अमरीका का उपभोक्ता वस्तु उद्योग समाप्त प्रायः है। यही नहीं थोक (कृषि उत्पाद एवं अन्य उत्पाद) मंडियों और बाजारों में लगे मजदूर भी रोजगार से बाहर हो जाएंगे, क्योंकि ये कंपनियां इन बाजारों से खरीद नहीं करेंगी। अपने स्टोरों पर इन कंपनियां चूंकि मशीनों से काम करेगी, इसलिए मजदूरों को वहां भी रोजगार नहीं मिलेगा। मजदूरों को इसके लिए एक निर्णायक आन्दोलन की रूपरेखा बनानी होगी। हाल ही में इस विषय पर देशभर के मजदूर संगठनों ने औद्योगिक बद का आह्वाहन किया था। इस आन्दोलन को और आगे बढ़ाते हुए देश भर में मजदूरों को जागरूक करना होगा।

जागो हॉकर जागो

देश में करोड़ों लोग रेहड़ी, पटरी, खोमचा इत्यादि के रूप में सड़क पर, बिना किसी स्थायी व्यवस्था के, अपना व्यापार चलाते हैं। इन लोगों को कभी पुलिस और कभी स्थानीय निगम निकायों और अन्य सरकारी एजेंसियों, हफ्ता वसूली करने वाले असमाजिक तत्त्वों से जूझना पड़ता है। वर्षा, धूप और अन्य प्राकृतिक समस्याओं से लड़ते हुए ये अपना जीवनयापन करते हैं। इनकी समस्याओं का निराकरण करना तो दूर, अब इनकी प्रतिस्पर्द्धा में बड़ी विदेशी कंपनियों को अपने स्टोर खोलने की अनुमति दे दी गई है। रेहड़ी, पटरी, खोमचा के द्वारा खाद्य पदार्थ बेचने वालों के लिए तो एक अतिरिक्त समस्या खड़ी कर दी गई है, जिसका नाम है – Food Safety and Standard Act. इस कानून के अनुसार सफाई एवं अन्य प्रकार के मानकों को इस प्रकार का बनाया गया है, जिसका अनुपालन छोटे हॉकर कभी कर ही नहीं सकते। सरकार का यह निर्णय देश में हॉकरों के अस्तित्व को समाप्त कर देगा। अपनी रोजी–रोटी की रक्षा के लिए सभी प्रकार के हॉकरों को एकजुट होकर आंदोलन करना होगा।

जागो लघु उद्यमी जागो

देश में लगभग 2 करोड़ छोटे और कुटीर उद्योग हैं। जिसमें कम से कम 10 करोड़ लोग काम करते हैं। भूमंडलीकरण की नीति के कारण, विदेशी आयातों को खुली छूट दे दी गई जिसके कारण आज भारत का बाजार चीनी और अन्य विदेशी सामानों से पटा हुआ है। इस बीच ऐसे क्षेत्र जो लघु और

कुटीर उद्योग के लिए आरक्षित थे, को बड़े उद्योगों के लिए खोल दिया गया। यही नहीं लघु उद्योगों से सरकार को जो अनिवार्य खरीद करने का प्रावधान था, उसे भी या तो समाप्त कर दिया गया या ढ़ीला कर दिया गया। सरकारी आंकड़ों के आधार पर भी आज देश के लगभग एक तिहाई लघु और कुटीर उद्योग बंद पड़े हैं। खुदरा में विदेशी निवेश के नाम पर लघु उद्योगों पर एक और आघात कर दिया गया है। यह सर्वविदित है कि वालमार्ट सरीखी बहुराष्ट्रीय खुदरा कंपनियां चीन से अपना सामान खरीदती है। वालमार्ट के स्टोरों में 90 प्रतिशत से ज्यादा चीन निर्मित होता है। सरकार का यह तर्क कि उन्हें 30 प्रतिशत सामान अनिवार्य रूप से भारत के लघु और मध्यम उद्योगों से ही खरीदना होगा, यदि सही मान भी लिया जाए तो 70 प्रतिशत सामान वे विदेश से लायेंगे। विदेशों, विशेष तौर पर चीन के उद्योग पनपेगें और भारत का लघु उद्योग बंद हो जायेगा। आज जरूरत इस बात की है कि देश के सभी लघु उद्यमी इक्ठ्ठा होकर आंदोलन के माध्यम से सरकार पर दबाव बनाए और जन–चेतना के द्वारा उन राजनैतिक दलों को, जो खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश के समर्थक है, को अहसास कराएं कि वहीं राजनैतिक दल शासन करेगा जो इस देश में रोजगार को बचायेगा और एफ.डी.आई. का विरोध करेगा।

जागो ट्रांसपोर्टर जागो

देश भर में लगभग 63 लाख ट्रक दिन–रात किसानों, व्यापारियों एवं उद्योगों का माल ढोते हैं। इनमें माल लादने और उतारने में करोड़ों मजदूर अपनी आजीविका चला रहे हैं। साथ ही साथ इन ट्रकों की मरम्मत एवं रखरखाव के कार्य में भी करोड़ों नागरिक कार्यरत है। खुदरा व्यापार में FDI लाने के कानूनी प्रावधान के साथ साथ यह सरकार अनेक ऐसे कानून भी पारित करती जा रही है कि जिससे आम ट्रांसपोर्ट के लिए इन कंपनियों का माल ढोना ही कठिन हो जायेगा। छोटे टेम्पो, रिक्शा, ठेली वालों को तो ये कंपनियां वैसे भी अपने परिसर में घुसने नहीं देती है।

उदाहरण के लिए सरकार के द्वारा हाल की में पारित किये गये Food Safety and Standard Act के प्रावधानों को ध्यान से देखें तो साधारण ट्रक वाला इनका माल ढो ही नहीं सकता। खाद्य एवं अन्य वस्तुओं को ढोने के दौरान ट्रक का निश्चित तापमान, स्वच्छता के मानक आदि की आड़ में ट्रांसपोर्ट उद्योग को भी बड़ी कंपनियों के हवाले करने की भूमिका बनाई जा रही है।

खुदरा में विदेशी कंपनियों के आने से देश के निजी ट्रांसपोर्ट क्षेत्र पर संकट मंडरा रहे हैं। विश्व भर में ये कंपनियां माल ठोने के लिए अपने ट्रकों और अन्य वाहनों का ही प्रयोग करती है। इनकी अपनी 'सप्लाई चेन' (आपूर्ति श्रंखला) की अवधारणा में बाहर से ट्रक भाडे पर लेना शमिल नहीं होता है।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री मोंटेक सिंह अहलूवालिया ट्रांसपोर्ट सेक्टर पर वर्ष 2001 में प्रस्तुत की गई अपनी रिपार्ट में पहले ही इस क्षेत्र को बड़ी कंपनियों के हवाले करने की बात कह चुके है।

आज ट्रांसपोर्ट, किसान, उद्योग एवं व्यापारी की कड़ियां आपस में इस कदर गुथी हुई हैं कि यदि एक भी प्रभावित होता है तो बाकी कड़िया भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेगी। ❑

–:: घोषणा पत्र ::–

स्वदेशी जागरण मंच के तत्वावधान में व्यापारी, लघु और कुटीर उद्योग, कारीगर, ट्रांसपोर्टर, किसान, हॉकर, मजदूर, छात्र एवं विभिन्न वर्गो के 150 से अधिक संगठन और 1000 से अधिक प्रतिनिधि दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब में आयोजित इस जुटान में शामिल हुए। देश भर से आए हुए प्रतिनिधियों का यह जुटान यूपीए सरकार द्वारा खुदरा में एफ.डी.आई. की नीति के खिलाफ देश भर में आंदोलन की घोषणा करता है। इस जुटान का यह स्पष्ट मानना है कि इस यूपीए सरकार द्वारा खुदरा क्षेत्र को विदेशी कंपनियों के लिए खोलकर भारत के एक वृहत खुदरा बाजार को विदेशी कंपनियों को सौपने का काम किया है। खुदरा में एफ.डी.आई. 1 करोड़ 20 लाख छोटी–बड़ी दुकानों में लगे 4 करोड़ लोगों के लिए ही घातक नहीं है बल्कि इस देश के करोड़ों मजदूरों, किसानों, ट्रांसपोर्टरों, लघु उद्यमियों और हॉकरों के लिए भी मौत का पैगाम है।

इस जुटान का स्पष्ट मानना है कि खुदरा क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियां आने के बाद हिंसक कीमत नीति के माध्यम से छोटे व्यापारियों और हॉकरों को प्रतिस्पर्द्धा से बाहर कर देगी। सारा सामान चीन और अन्य देशों से आयातित होगा और इस प्रकार करोड़ों मजदूरों और लघु उद्यमियों की रोजी–रोटी समाप्त हो जायेगी। किसानों का भी विविध प्रकार से शोषण होगा तथा नए रोजगार के अवसर समाप्त होने से देश का युवा वर्ग हताशा की ओर बढ़ेगा। देश का ट्रांसपोर्ट क्षेत्र भी बर्बाद हो जायेगा।

किसानों, मजदूरों, हॉकरों, छोटे और थोक व्यापारियों, ट्रांसपोर्टरों का यह जुटान घोषणा करता है कि इस लड़ाई को राज्य और जिलास्तर पर जाकर लड़ा जायेगा। देश भर में राज्य और जिलास्तर पर इस प्रकार के जुटान आयोजित होंगे। खुदरा में एफ.डी. आई. के खिलाफ देश भर में रैलियां, पद–यात्राएं, धरने–प्रदर्शन, नुकड़ सभाएं आयोजित होंगे। हर गांव से, हर जिला से किसानों, मजदूरों, हॉकरों, ट्रांसपोर्टरों, व्यापारियों, विद्यार्थियों के संगठनों के साथ मिलकर आगामी लोक सभा चुनावों में उन दलों को परास्त करने की रणनीति बनाई जायेगी जिन्होंने खुदरा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को संसद के अंदर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भारत में घुसने का रास्ता दिया।

यह जुटान संकल्प लेता है कि अगली लोकसभा के गठन के बाद, कानून बदलकर खुदरा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को भारत भूमि से भगाने तक यह संघर्ष जारी रहेगा।

स्वदेशी जागरण मंच की राष्ट्रीय परिषद् की बैठक (इन्दौर) 27–28 अप्रैल 2013 को आयोजित हुई। राष्ट्रीय परिषद बैठक में तीन प्रस्ताव पारित किए गए। इन प्रस्ताव को हम कार्यकर्ताओं और पाठकगण के लिए यहां प्रस्तुत कर रहे हैं. . . – संपादक

पारित प्रस्ताव–1

देश में बढ़ती खाद्य असुरक्षा और कंपनियों को भूमि देने की हड़बड़ी

सरकार ऐसे में भूमि अधिग्रहण मुआवजा एवं पुर्नवास विधेयक संसद में लेकर आयी है, जिसमें देश की बढ़ती खाद्य असुरक्षा का न तो जिक्र है और न ही कोई समाधान। यह विधेयक कई बार बदला गया है। भूमि अधिग्रहण के मामले को पूरी तरह से मुआवजे और पुर्नवास के साथ जोड़कर सरकार अपनी इतिश्री मान रही है। लेकिन भूमि अधिग्रहण के कारण होने वाली खाद्य असुरक्षा के प्रति यह विधेयक मौन है।

आज देश सरकार की खेती के प्रति उदासीनता का दंश झेल रहा है। 1990–91 में जहां प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता 510 ग्राम प्रतिदिन थी वह घटकर अब मात्र 427 ग्राम रह गयी है। इस बीच दालों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता भी आधे से भी कम रह गयी है। खाद्य तेलों की दृष्टि से भी देश विदेशों पर निर्भर हो गया है। यह सब सरकार की कृषि के प्रति उदासीनता का ही परिणाम है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी कृषि भूमि 1850 हेक्टेयर से घटकर मात्र 1830 लाख हेक्टेयर रह गयी है। किसान किसानी से बाहर हो रहा है। क्योंकि उचित कीमत न मिलने के कारण कृषि घाटे का सौदा बन गयी है।

सरकार बोट बटोरने के उद्देश्य से खाद्य सुरक्षा विधेयक लेकर आयी है। देश, पर्याप्त खाद्य पदार्थों की उपलब्धता न होने के कारण विदेशों पर निभेर होने की कगार पर खड़ा है, ऐसे में जरूरत इस बात की है कि कृषि को फायदे का सौदा बनाया जाए और किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य मिले तथा उनकी भूमि किसी भी हालत में छीनी न जा सके।

लेकिन पिछले लगभग एक दशक से किसानों को भूमि से वंचित किया जा रहा है। कभी सेज, तो कभी औद्योगिकरण, तो कभी सार्वजनिक निजी साझेदारी परियोजनाओं के नाम पर, तो कभी विश्वविद्यालयों के नाम पर। सेटेलाईट से लिए गए चित्रों के आधार पर स्पष्ट हो रहा है कि देश में हरित भूमि लगातार घट रही है।

सरकार ऐसे में भूमि अधिग्रहण मुआवजा एवं पुनर्वास विधेयक संसद में लेकर आयी है, जिसमें देश की बढ़ती खाद्य असुरक्षा का न तो जिक्र है और न ही कोई समाधान। यह विधेयक की कई बार बदला गया है। भूमि अधिग्रहण के मामले को पूरी तरह से मुआवजे और पुर्नवास के साथ जोड़कर सरकार अपनी इतिश्री मान रही है। लेकिन भूमि अधिग्रहण के कारण होने वाली खाद्य असुरक्षा के प्रति यह विधेयक मौन है। इससे पूर्व के विधेयक में यह कहा गया था कि जिन प्रांतों में कुल भूमि के 50 प्रतिशत से कम कृषि भूमि है उसमें 5 प्रतिशत से अधिक भूमि का अधिग्रहण नहीं किया जायेगा। लेकिन नए विधेयक में इस बात का निर्णय राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार पूर्व के विधेयक में यह कहा गया था कि केवल एक फसली भूमि का ही अधिग्रहण किया जायेगा। लेकिन नए विधेयक में बहु–फसली भूमि के अधिग्रहण का रास्ता भी खोल दिया गया है।

1894 के भूमि अधिग्रहण कानून के अनुसार केवल जनहित के उद्देश्य से ही भूमि का अधिग्रहण हो सकता है। लेकिन नए विधेयक में अधिग्रहण की परिभाषा को इस तरह विस्तृत कर दिया गया है कि अब उससे सड़क और ढ़ांचागत परियोजनाएं ही नहीं बल्कि उद्योग, अन्य व्यापारिक केन्द्र और यहां तक की खुदरा क्षेत्र में काम कर रही विदेशी कंपनियों द्वारा भंडारण, कोल्ड स्टोरेज और आपूर्ति श्रृंखला हेतु परियोजनाओं के लिए भी भूमि उपलब्ध कराने का प्रावधान है। ऐसे में सरकार कंपनियों के लिए भूमि अधिग्रहित कर उनके एजेंट के रूप में काम कर रही है।

स्वदेशी जागरण मंच की राष्ट्रीय परिषद केन्द्र सरकार से यह मांग करती है कि –

(1) नये भूमि अधिग्रहण एवं पुनर्वास बिल को पारित करवाने की हड़बड़ी न की जाए और उसमें खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु पर्याप्त प्रावधान किए जाए।

(2) कृषि भूमि का अधिग्रहण न हो और

द्विफसली और बहुफसली भूमि का किसी भी हालत में अधिग्रहण न हो।

(3) औद्योगिक घरानों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के पास अनुपयुक्त भूमि किसानों को वापिस किया जाए, या उसी भूमि को अन्य उद्योगों के लिए उपलब्ध कराया जाए।

(4) उद्योगों और अन्य कार्यों के लिए भूमि की आवश्यकता ठीक प्रकार से तय हो और गैर–जरूरी कार्यों के लिए भूमि न ली जाए। अधिग्रहित की जाने वाली भूमि को उसके कहे गए उद्देश्य के अनुसार उपयोग न होने पर उसे किसानों को वापिस करने का प्रावधान हो। किसानों के स्वामित्व वाली समस्त भूमि पर खेती सुनिश्चित हो।

(5) किसी भी हालत में किसानों से भूमि का मालिकाना हक न छीनकर उनकी भूमि को लीज पर ही लाने का प्रावधान किया जाए और भूमि का किराया भी एक निश्चित अवधि में बढ़ाने का प्रावधान हो। इस राशि में भूमिहीन मजदूरों की हिस्सेदारी भी सुनिश्चित की जाए।

(6) वन भूमि का किसी भी कीमत पर अधिग्रहण न किया जाए।

(7) आबादी के हिसाब से खाद्य सुरक्षा, पशुओं के चारे और वृक्ष उगाने के लिए जितनी जमीन की आवश्यकता है इसके निर्धारण के पश्चात की शेष जमीन का अन्य कार्यों के लिए उपयोग होना चाहिए। ❑

पारित प्रस्ताव–2

बहिष्कार से दें चीन को जवाब

हमारा रुपया आज दबाव में है जो किसी भी स्तर तक नीचे जा सकता है सरकार द्वारा विदेशी निवेशकों को छूट दिये जाने के बावजूद भुगतान घाटा कम होने का नाम नहीं ले रहा है। इसके लिए सरकार यह तर्क गढ़ रही है कि कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों एवं यूरोपीय देशों के आर्थिक संकट के कारण वह परिस्थिति है जिसके लिये सरकार स्वयं को असहाय बता रही है। सच्चाई यह है कि सरकार जन विरोधी आर्थिक नीति अपना रही है और भ्रष्टाचारियों के साथ मिलीभगत कर रही है, जिससे कि भुगतान संतुलन बिगड़ रहा है और घाटा बढ़ता जा रहा है।

स्वाधीनता के पश्चात हमारे देश की सरकारों ने अपने देश की प्रगति का मार्ग पश्चिमी देशों के माडलों में खोजने की कोशिश की। ऐतिहासिक काल खंड में दुनिया के जीडीपी भी भारत का योगदान 25 प्रतिशत था। पश्चिमी देशों के रास्ते पर चलने के कारण हम पिछड़ रहे हैं और चीन हमसे आगे जा रहा है। साथ ही चीन उत्पादन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा उत्पादन केन्द्र है। पिचकारी हो या गुलाल, हमारे देवी–देवताओं की प्रतिमाओं, दिवाली एवं विवाह के अवसर पर पटाखे एवे विद्युतीय झालरों, सौदर्य प्रसाधन, दूर संचार/इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उपहार एवं अन्य सजावट की चीन निर्मित वस्तुओं ने भारतीय बाजारों पर कब्जा कर लिया है। देश में 30 प्रतिशत वस्तुएं चीन निर्मित पायी जाती है और चीन के साथ व्यापार घाटा 40 अरब डॉलर पर पहुंच गया है।

देश आज भुगतान घाटे की जबरदस्त त्रासदी से गुजर रहा है। 1990–91 में देश सबसे बुरी आर्थिक स्थिति तथा भुगतान संकट से ग्रस्त था। देश को अपने सोने के भंडारों को विदेशों में गिरवी रखना पड़ा था तब भी हमारे भुगतान शेष का घाटा जीडीपी के 3 से 3.5 प्रतिशत तथा वर्तमान में यह भुगतान शेष घाटा जीडीपी के 6.7 प्रतिशत तक पहुंच चुका है। आज यह भुगतान शेष घाटा 100 अरब डॉलर के करीब पहुंच रहा है जिसमें चीन के साथ हो रहे व्यापार घाटे का परिणाम 40 प्रतिशत है।

हमारा रुपया आज दबाव में है जो किसी भी स्तर तक नीचे जा सकता है सरकार द्वारा विदेशी निवेशकों को छूट दिये जाने के बावजूद भुगतान घाटा कम होने का नाम नहीं ले रहा है। इसके लिए सरकार यह तर्क गढ़ रही है कि कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों एवं यूरोपीय देशों के आर्थिक संकट के कारण वह परिस्थिति है जिसके लिये सरकार स्वयं को असहाय बता रही है। सच्चाई यह है कि सरकार जन विरोधी आर्थिक नीति अपना रही है और भ्रष्टाचारियों के साथ मिलीभगत कर रही है, जिससे कि भुगतान संतुलन बिगड़ रहा है और घाटा बढ़ता जा रहा है।

इस भुगतान घाटे का मुख्य कारण सामान्य नजर आने वाली वस्तुएं तो हैं ही किंतु विविध प्रकल्पों जैसे टेलीकॉम, पावर हाउस एवं अन्य परियोजनाओं में उपयोग में लायी जाने वाली सामग्री का भी बड़ा योगदान है। हमारी बड़ी–बड़ी कंपनियों

को ऑर्डर न मिलने के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। और चीनी उद्योगों को फायदा हो रहा है।

चीन एक आणविक महाशक्ति है जो दुनिया के लिए सिरदर्द है और भारत उसका पड़ोसी होने के नाते अत्यधिक संकट में है। चीन ने भारत पर 1962 के प्रत्यक्ष आक्रमण के बाद आधिकारिक तौर पर 469 बार घुसपैठ की है। ब्रह्मपुत्र नदी पर जगह–जगह बाँध बाँधकर भारत के लिए बाढ़/सूखा संकट उत्पन्न करता रहा है। भारत के वनवासी समाज से नक्सलवाद के माध्यम से विद्रोह को बढ़ावा दे रहा है और शस्त्र एवं अन्य सामग्री के लिए आर्थिक सहायता देता है। गांजा, अफीम तथा अन्य नशीले पदार्थों की तस्करी को बढ़ावा देकर भारत की युवा पीढ़ी को बरबाद करने में रत है। साथ ही हमारी सीमाओं पर स्थान–स्थान पर अपने सैन्य अड्डे बनाकर भारत की घेराबंदी करने की कोशिश कर रहा है।

दस हजार सायबार योद्धाओं के माध्यम से दुनिया के आई.टी. क्षेत्रों को हाइजैक करने का आतंक भी मचा रहा है। लेह, लद्दाख तथा देश की अन्य सीमाओं पर स्थित प्रदेशों में उपद्रवी कदम उठाते रहना चीन का खेल है। इस तरह से वह भारत की प्रभुसत्ता को चुनौती देता रहता है। चीन की ऐसी गतिविधियों की अनदेखी करना भारी भूल होगी।

इसलिए राष्ट्रीय परिषद में यह निर्णय लिया गया कि –

(1) भारत में चलने वाली विविध परियोजनाओं में उपयोग में लायी जाने वाली चीन निर्मित वस्तुओं पर पाबंदी लगायी जाए।

(2) नक्सलवाद को परास्त करने एवं वनवासी समाज स्वावलंबी बने इसके लिए विभिन्न उपक्रम चलाए जाए और चीन की दखलअंदाजी पर विराम लगाया जाए।

(3) भारत के खनिज एवं प्राकृतिक संपदा के निर्यात पर नियंत्रण लगें।

(4) छोटे विदेशी उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए प्रभावी एवं कारगर प्रयास किए जाए।

(5) देश में शोध और विकास पर खर्च बढ़ाकर चीन को कड़ी प्रतिस्पर्द्धा दी जाए।

(6) सामरिक महत्व के क्षेत्रों में चीनी कंपनियां प्रतिबंधित हों और रक्षा उपकरणों में चीन की कंपनियों के साथ अनुबंध भी प्रतिबंधित हों।

(7) स्वदेशी जागरण मंच इस देश की जनता का आवाहन करता है कि चीन निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार करे एवं चीन के इस भारत विरोधी षड्यंत्र को परास्त करने में सहयोग करें। ❑

पारित प्रस्ताव–3

यूरोपीय संघ के साथ मुक्त व्यापार समझौते रोको

विश्व व्यापार संगठन के साथ किया गया समझौता देश के हितों के खिलाफ है। यह अब सर्वविदित है। लघु उद्योग, कृषि, वित्तीय एवं अन्य सेवाएं इत्यादि इस समझौते, जो उस समय की कांग्रेस सरकार द्वारा देश की जनता को धोखा देते हुए किया गया, बुरी तरह से प्रभावित हुए है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि आम आदमी की कीमत पर मुक्त व्यापार के नाम पर विदेशी व्यापार में तमाम रियायतें दे दी गई।

उस समय विश्व व्यापार संगठन में समझौता करने के बावजूद यूरोपीय एवं अन्य विकसित देश अपने प्रतिबद्धताओं पर खरे उतरे और उन्होंने न तो वायदे के अनुसार कृषि सब्सिडी घटाई और न ही औद्योगिक वस्तुओं पर आयात शुल्क घटाएं। व्यक्तियों की आवाजाही पर भी पाबंदियों को लगातार बढ़ाया जा रहा है।

विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के दो दशक बाद हम देखते हैं कि आज हमारी कंपनियों के शेयर 15 प्रतिशत तक विदेशी निवेशकों के हाथ में जा चुके हैं। दवा, सीमेंट, ऑटोमोबाईल, इलैक्ट्रॉनिक, टेलीकॉम विनिर्माण क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों का प्रादुर्भाव लगातार बढ़ता जा रहा है और अन्य क्षेत्रों में भी वे अपने पैर पसारते जा रहे हैं।

इस देश की गरीबी और अज्ञानता का लाभ उठाते हुए, अपने देशों में जिन के बारे में सोच भी नहीं सकती, विदेशी कंपनियां भारत में उन्हीं अनैतिक धंधों में संलग्न हो रही है। सत्तासीन लोगों में व्याप्त भ्रष्टाचार और सत्ताधीशों की मिलीभगत से ये कंपनियां ऐसा करने में सफल हो रही हैं।

इन परिस्थितियों में सरकार लगातार विदेशी दबाव में आती जा रही है। इस

व्यापार समझौते को चोरी–छिपे करने का प्रयास हो रहा है और इनके बारे में देश की जनता और संसद को न केवल अंधेरे में रखा जा रहा है, बल्कि उसे गुमराह भी किया जा रहा है।

यूरोपीय संघ को लगने लगा है कि अब विश्व व्यापार संगठन में किए गए समझौतों में की गई प्रतिबद्धताओं को पूरा करना संभव नहीं है और उससे अधिक रियायतों को पा सकना भी संभव भी नहीं है, इसलिये उसने विश्व व्यापार संगठन से अलग मुक्त व्यापार समझौते का रास्ता ले लिया है।

यूरोपीय संघ के आंतरिक दस्तावेज के अनुसार, यूरोपीय संघ ने दावा किया है कि इस प्रस्तावित समझौते से उसे भारत से कही अधिक और यही नहीं उसे पूर्व के विश्व व्यापार संगठन में किए गए समझौते से भी अधिक लाभ मिलेगा।

दुर्भाग्य पूर्ण है कि प्रस्तावित समझौते के कारण देश के डेयरी क्षेत्र पर सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव पड़ेगा। लेकिन डेयरी क्षेत्र से किसी भी प्रकार की मंत्रणा तो की ही नहीं गई बल्कि उसकी गुहार को भी सुना नहीं जा रहा है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यदि यूरोपीय संघ को और रियायतें दी जाती है तो ऐसे में भारतीय उद्योग विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हथकंडों के खिलाफ कानूनी रास्ता लेने में सक्षम नहीं रहेंगे।

सरकार यूरोपीय संघ की ऑटोमोबाईल कंपनियों के दबाव में लगातार झुकती जा रही है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे समस्त उद्योग जो भारतीयों की कड़ी मेहनत के दम पर स्थापित हुये हैं सरकार के मनमाने रवैये की भेंट चढ़ते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि भारत सरकार यूरोपीय समुदाय के हितों की रक्षा की कोशिश में भारतीय हितों की बलि देती जा रही है और यूरोपीय संघ से बिना कोई लाभ लिए एक तरफा रियायतें दी जा रही है। इन परिस्थितियों में स्वदेशी जागरण मंच की राष्ट्रीय परिषद केन्द्र सरकार से मांग करती है कि –

(1) यूरोपीय संघ के साथ प्रस्तावित समझौते के सभी पहलुओं के बारे में पूरा खुलासा देश के सामने किया गया।

(2) सभी प्रस्तावित पक्षों जैसे किसान, उद्योग विशेषतौर पर दवा और ऑटोमोबाईल उद्योग, सेवा क्षेत्र तथा डेयरी क्षेत्र के प्रतिनिधियों एवं संगठनों से विस्तृत मंत्रणा हो।

(3) संसद में व्यापक चर्चा और बहस के बिना यूरोपीय संघ के साथ कोई समझौता न किया जाए क्योंकि देश में आम चुनाव बहुत करीब है, ऐसे में इस समझौते द्वारा आने वाली सरकार के हाथ बाँधने जैसा काम हो रहा है, क्योंकि वह अपना स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम नहीं रहेगी।

(4) जब तक यूरोपीय संघ द्वारा सब्सिडी (प्रत्यक्ष अथवा छिपी हुई) में कमी नहीं होती तब तक यह समझौता न किया जाए।

(5) आयात शुल्कों में कमी की बाध्यता को किसी भी हालत में स्वीकार न किया जाए, ताकि लघु कुटीर उद्योगों की सुरक्षा हो सके।

(6) पहले से किए समझौतों से आगे बढ़कर पेटेंट के संदर्भ में कोई नई रियायत न दी जाए। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

कृषि

अब छोटे किसानों के पेट पर लात

आज अमेरिका और यूरोपीयन यूनियन के देशों में ऐसे अनेक मामले हैं, जिनमें सब्सिडी का असमान वितरण और बंदरबांट किया गया, जिससे कि जरूरतमंद किसान सहायता पाने से ही महरूम रह गए विकसित देशों में 80 फीसद सहायता धनी किसानों और कृषि कारोबारी कम्पनियों में बंटना जारी है, किंतु विकासशील देश यह स्थिति उलटने के लिए विश्व व्यापार संगठन पर दबाव बनाने में विफल रहे हैं। इस विफलता के चलते सस्ते आयात ने अनेक विकासशील देशों को खाद्यान्न आयातकों में बदल कर वहां की खेती को तबाह किया है...

ऐसे समय, जब मितव्ययिता और खर्च में कटौती दुनिया का रिवाज हो गई है, तो धनी और ताकतवरों के साथ कोई 500 सौभाग्यशाली कृषि व्यावसायिक कॉरपोरेट घरानों का सब्सिडी के रूप में मोटा रोकड़ा पाना जारी है। औद्योगिक देशों में कृषि–व्यवसाय को तबाह करने वाले कृषि सहायता पर विकासशील देशों के विरोध के साथ, यह सब्सिडी विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में लगातार विवाद का विषय बना हुआ है। लेकिन अमेरिका और यूरोपियन संघ (ईयू) को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ खेती– सब्सिडी पाने वालों में सबसे प्रमुख हैं। वह विगत दशक में आठ मिलियन पौंड सब्सिडी पाती थीं। निस्संदेह महारानी किसान नहीं हैं लेकिन

ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ खेती–सब्सिडी पाने वालों में सबसे प्रमुख हैं। वह विगत दशक में आठ मिलियन पौंड सब्सिडी पाती थीं। निस्संदेह महारानी किसान नहीं हैं लेकिन नॉरफोक क्षेत्र में एक विशाल फार्म की मालिक होने की वजह से वह कॉमन एग्रीकल्चर पॉलिसी (कैप) के तहत यह मोटी रकम पाती हैं।

■ **देविन्दर शर्मा**

नॉरफोक क्षेत्र में एक विशाल फार्म की मालिक होने की वजह से वह कॉमन एग्रीकल्वर पॉलिसी (कैप) के तहत यह मोटी रकम पाती हैं।

ब्रिटेन के अरबपतियों में शुमार वेस्टमिनिस्टर के ड्यूक, जिनकी कुल संपत्ति सात बिलियन पौंड होने का

अनुमान है, वह विगत एक दशक में सात मिलियन पौंड से ज्यादा की रकम सहायता मद में पा चुके हैं। ड्यूक के पास 55,000 हेक्टेयर का फार्म है। सब्सिडी के रूप में भारी–भरकम राशि पाने वाले अन्य अरबपतियों में सर रिचर्ड स्टॉन भी हैं, जो अब तक दो मिलियन पौंड पा चुके हैं। रिचर्ड ''टाईम रिच लिस्ट'' में शामिल हैं। यद्यपि ईयू ने कृषि सहायता में कटौती की है लेकिन किसानों को वित्तीय मदद जारी है। पिछले सात साल से दी जा रही (जिसकी मियाद 2013 तक है) 417 बिलियन यूरो की सब्सिडी की तुलना में 2014–20 के दौरान 363 बिलियन यूरो देना तय किया गया है।

फरवरी में इस मुद्दे पर बातचीत में हुए निर्णय के बाद फ्रांस के राष्ट्रपति फ्रैंकोसिस होलांदे ने जीत का दावा किया, ''यूरोपीय संघ देशों के बजट में कृषि मद की राशि में आनुपातिक कटौती की जाएगी लेकिन मैंने यह सुनिश्चित किया है कि हमारे सौभाग्यशाली किसानों को वित्तीय मदद मिलती रहे।'' ब्रूसेल्स की एक गैर सरकारी

संस्था फार्म सब्सिडी ओरजी का कहना हैः पूरे यूरोप में खेती सहायता पाने वाले 1,212 अरबपति हैं, इनमें जर्मनी के 268, फ्रांस के 174 और ब्रिटेन के 29 समृद्ध और भाग्यशाली किसान हैं। इनमें ब्रिटेन के पूर्व पर्यावरण और मत्स्यपालन मंत्री, रिचर्ड बेन्योन शामिल हैं, जिन्हें 20,000 हेक्टेयर के फार्म को 1999—2009 के दौरान दो मिलियन पौंड की रकम दी जा चुकी है। अकेले 2009 में ही वह यूरोपीय संघ से 200,000 पौंड पा चुके थे।

यह सहायता पाने वाले यूरोपीय संघ के वह अकेले मंत्री नहीं हैं। डेनमार्क, नीदरलैंड, बुल्गारिया, स्पेन, इटली और बेल्जियम के अनेक मंत्री सब्सिडी के रूप में भारी रकम पाते रहे हैं। फार्म सब्सिडी ओरजी के मुताबिक कृषि सहायता मद की 80 फीसद रकम तो एक चौथाई भूभाग, अभिजात्यों (इनमें रजवाड़े और मंत्री शामिल हैं) तथा कृषि व्यावसायिक बड़े घरानों के हिस्से चली जाती है।

मसलन, कृषि सहायता कार्यक्रम के तहत लाभान्वित होने वालों में चीनी उत्पादन इकाइयां शीर्ष 10 में शामिल थीं। इनमें हरेक को 55 मिलियन यूरो मिले थे। ब्रिटेन के सबसे बड़े चीनी उत्पादक टेट एंड लायले और उसके समकक्ष फ्रांस के टेरोज सबसे ज्यादा सब्सिडी पाने वालों में रहे हैं।

नेस्ले एक साल में एक मिलियन पौंड से ज्यादा की सब्सिडी पाता रहा है। यहां तक कि आम्स्टर्डम में सिफॉल एअरपोर्ट ने 12,000 करोड़ डॉलर की सब्सिडी पाई है।

क्या ये तथ्य प्रस्तावित भारत यूरोपीय संघ मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) के तहत आयात दर कम करने के यूपीए सरकार के कदम, जिनसे लाखों छोटे किसानों की आजीविका खतरे में पड़ जाएगी, के प्रति चिंता के काफी कारण नहीं हैं? भारी मात्रा में सब्सिडी कृषि उत्पादों के अंतरराष्ट्रीय दाम को घटाएगी, जिससे यूरोपीय संघ दूध और दुग्ध उत्पाद समेत अपने कृषि उत्पादों को भारत में डम्प कर देगा। प्रस्तावित एफटीए के तहत यूरोपीयन उत्पादों की भारतीय बाजारों में सीधी पहुंच बनाने के लिए लगभग सभी कृषि वस्तुओं पर आयात कर घटाया जा रहा है।

क्या ये तथ्य प्रस्तावित भारत यूरोपीय संघ मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) के तहत आयात दर कम करने के यूपीए सरकार के कदम, जिनसे लाखों छोटे किसानों की आजीविका खतरे में पड़ जाएगी, के प्रति चिंता के काफी कारण नहीं हैं? भारी मात्रा में सब्सिडी कृषि उत्पादों के अंतरराष्ट्रीय दाम को घटाएगी, जिससे यूरोपीय संघ दूध और दुग्ध उत्पाद समेत अपने कृषि उत्पादों को भारत में डम्प कर देगा। प्रस्तावित एफटीए के तहत यूरोपीयन उत्पादों की भारतीय बाजारों में सीधी पहुंच बनाने के लिए लगभग सभी कृषि वस्तुओं पर आयात कर घटाया जा रहा है।

अमेरिका में, राजनीतिक रूप से संवेदनशील फैसलों को कांग्रेस ने बदल दिया है और खेती विधेयक 2013 को पारित कराने के बदले 2008 के विधेयक को ही चालू वर्ष के सितम्बर तक जारी रखने का फैसला किया है। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रैंकलिंग डी रुजवेल्ट ने 1930 के दशक में खेती विधेयक को आपात स्थिति से निबटने के लिए तात्कालिक हल के रूप में लागू किया था। तब से फार्म बिल अहम संघीय कार्यक्रम बन गया है, जिसके तहत बड़े किसानों, समृद्ध भूस्वामियों और कृषि व्यवसाय करने वाली कम्पनियों को मोटी वित्तीय सहायता दी जाती है।

दिलचस्प बात यह है कि फार्म सब्सिडी उन किसानों को भी दी जाती है, जो किसी तरह की खेती नहीं करते। इसके पीछे तर्क यह है कि जैवविविधता और पर्यावरण संरक्षण के लिए खेती न करने वाले किसानों को वित्तीय समर्थन दिए जाने की जरूरत है।

दिलचस्प बात यह है कि फार्म सब्सिडी उन किसानों को भी दी जाती है, जो किसी तरह की खेती नहीं करते। इसके पीछे तर्क यह है कि जैवविविधता और पर्यावरण संरक्षण के लिए खेती न करने वाले किसानों को वित्तीय समर्थन दिए जाने की जरूरत है।

कंजर्वेशन रिजर्व प्रोग्राम के तहत अमेरिका के किसानों ने 10 साल की संविदा पर इस वादे के साथ दस्तखत किए कि वह पर्यावरण संरक्षा के लिए अपनी जमीन पर खेती नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप, चार करोड़ एकड़ से ज्यादा जमीन हरेक साल यों ही पड़ी रह जाती है। यहां तक कि यूरोप में भी, किसानों को कुछ न उपजाने के एवज में सब्सिडी दी जाती है। लेकिन हम खेती सहायता के उस असमान वितरण के मुद्दे पर फिर लौटें। 1995 और 2005 के दौरान, लायक 10 फीसद किसानों ने औसतन प्रति फार्म 91,000 डॉलर के हिसाब से 73 फीसद सब्सिडी प्राप्त की जबकि वास्तविक रूप से सहायता पाने वाले 80 फीसद

किसानों को प्रति फार्म 3,000 डॉलर से भी कम की सहायता दी गई। बाद के वर्षों में तो स्थिति और बदतर हुई है। 1995–2010 के बीच तो 80 फीसद सब्सिडी औसतन 587 डॉलर से भी कमतर हो गई, जहां 62 फीसद किसानों को कोई सहायता नहीं मिली।

अमेरिकी हेरिटेज फांउडेशन के मुताबिक, टेड टर्नर, डेविड रॉकफेलर और बॉस्केटबॉल के पूर्व खिलाड़ी स्कॉटी पिप्पन जैसे शौकिया किसानों ने क्रमशः 206,948; 553,782 और 210,520 डॉलर की सब्सिडी पाई। इसी तरह, फ्लोरिडा के रीअल एस्टेट कारोबारी मौरिस वाइल्डर ने मकई की फसल के लिए एक साल में एक मिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता हासिल की। भारत की तरह, अमेरिका और ईयू में गैरहाजिर भूस्वामियों की जेबों में भी कृषि सहायता की रकम पहुंच गई। पर्यावरण कार्यकारी समूह कहता है, टेक्सास के पांच शहरों के मात्र 7,767 किसानों ने 61,747,945 करोड़ डॉलर की सब्सिडी हासिल की। इन तथ्यों के आलोक में कृषि सहायता का कार्यक्रम इसलिए एक शर्मनाक घटना है। ऐसे अनेक मामले हैं, जिनमें अधिकतर किसानों ने ज्यादा से ज्यादा सब्सिडी पाने के लिए दूसरे नामों से अपनी जमीन की मिल्कियत दिखाई। ऐसे ही एक किसान ने अपनी दो साल की बेटी के नाम पर लाखों डॉलर की सब्सिडी झटक ली।

ऐसे बेशुमार मामले हैं, जिनमें सब्सिडी का असमान वितरण और बंदरबांट किया गया, जिससे कि जरूरतमंद किसान सहायता पाने से ही महरूम रह गए। विकसित देशों में 80 फीसद सहायता धनी किसानों और कृषि कारोबारी कम्पनियों में बंटना जारी है, किंतु विकासशील देश यह स्थिति उलटने के लिए विश्व व्यापार संगठन पर दबाव बनाने में विफल रहे हैं। इसमें विफलता ने कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। सस्ते आयात ने अनेक विकासशील देशों को खाद्यान्न आयातकों में बदल कर वहां की खेती को तबाह किया है। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

मुनाफे में कम्पनियां मुसीबत में मजदूर

चाहे वे बीड़ी मजदूर हों या दैनिक मजदूर, फुटपाथों पर फलों की रेहड़ी लगाने वाला हो या फिर रिक्शा, ठेला और तांगा चलाने वाले मजदूर। सिर्फ दिल्ली में ही उनकी संख्या करीब 5 लाख है, जबकि पूरे देश में इनकी संख्या करोड़ों में है. . .उल्लेखनीय है कि जब किसी उद्योगपति का कारोबार मंदा पड़ता है, तब सरकार आर्थिक पैकेज देकर उसे संकटों से उबार लेती है, लेकिन जब मजदूर अपने उचित अधिकारों की मांग करता है, तो उसे सिर्फ झूठा आश्वासन ही मिलता है।

मई दिवस से ठीक तीन रोज पहले नोएडा की एक कंस्ट्रक्शन कंपनी में कार्यरत मजदूरों ने अपने बकाया पैसे की मांग की, लेकिन उन श्रमिकों को रुपये देने की बजाय कंपनी के ठेकेदारों ने गोली मारकर जख्मी कर दिया। पिछले साल मानेसर स्थित मारुति–सुजूकी के कारखाने में भी मजदूरों और प्रबंधन के बीच हिंसा हुई थी। सरकार और कंपनी के अधिकारियों को इसमें भी मजदूरों का दोष ही नजर आया। इतना ही नहीं उन मजदूरों पर अराजक और नक्सली होने का आरोप भी मढ़ दिया गया, ताकि मीडिया भी उन्हें नक्सली घोषित कर दे।

■ **अभिषेक रंजन सिंह**

यदि कोई मजदूर घंटों पसीना बहाकर किसी कंपनी को फायदा पहुंचाता है, तो उस वक्त मालिकों को अपने मजदूरों से कोई शिकायत नहीं होती, लेकिन जब वही मजदूर अपने वाजिब अधिकारों की बात करता हैं, तब उसे गैर सामाजिक तबका करार दिया जाता है।

किसी भी मजदूर के लिए फैक्ट्री एक घर की तरह है, जिसमें वह काम करता है। वह इस बात को बखूबी समझता है कि इसी से उसके परिवार का भरण–पोषण होता है। हर कामगार सदैव यही चाहता है कि फैक्ट्री आगे बढ़े और उसके मालिक को फायदा हो, ताकि उसे भी इसका लाभ मिले। हालांकि, कारखानों के मालिकान ऐसी सोच नहीं रखते हैं।

सच्चाई यह है कि दुनिया में कोई भी कंपनी अपने कर्मचारियों की वजह से घाटे में नहीं जाती और न ही बंद होती है। जब मुनाफा होता है, तो मजदूरों के योगदान को भुला दिया जाता है और जब नुकसान होने लगता है, तब छंटनी और वेतन रोकने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस परंपरा को बदलना होगा, क्योंकि गैर बराबरी की शुरूआत यहीं से होती है, जो बाद में गहरे असंतोष को जन्म देती है।

भारत में असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की संख्या करीब 93 प्रतिशत है, जिसे पेंशन, भविष्य निधि, अवकाश और चिकित्सीय सुविधाएं भी हासिल नहीं है। हालांकि संगठित क्षेत्रों के मजदूरों जिनकी संख्या महज पौने तीन करोड़ है, उनकी हालत में बेशक सुधार हुआ है, लेकिन यहां नई नियुक्तियों की बजाय अनुबंध पर कार्य कराने का चलन बढ़ गया है। एक आंकड़े के मुताबिक, भारत में कुल श्रम शक्ति करीब 48 करोड़ है।

श्रमिक हितों की अनदेखी और केंद्र सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के खिलाफ ट्रेड यूनियनों ने इस साल 20–21 फरवरी को जिस तरह देशव्यापी हड़ताल

की, उसे मजदूर आंदोलन की एक नई और अच्छी पहल मानी जा सकती है। ट्रेड यूनियनों की यह हड़ताल न सिर्फ पूरी तरह कामयाब रही, बल्कि इस हड़ताल ने सप्रंग सरकार की मजदूर विरोधी नीतियों को भी उजागर कर दिया।

इस हड़ताल की सबसे खास बात यह थी कि आजादी के बाद पहली मर्तबा देश की सभी छोटी–बड़ी ट्रेड यूनियनें एक मंच पर दिखीं। न केवल वामपंथी, बल्कि दक्षिणपंथी श्रमिक संगठन भी इस हड़ताल में शामिल हुए। इस हड़ताल से केंद्र सरकार कितनी डरी और सहमी हुई थी, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने हड़ताल शुरू होने से दो दिन पूर्व ट्रेड यूनियनों से हड़ताल वापस लेने की अपील की थी। प्रधानमंत्री की इस अपील को ट्रेड यूनियनों ने न सिर्फ खारिज किया, बल्कि सरकार को चेताया कि अगर उनकी मांगे पूरी नहीं की गई, तो भविष्य में बेमियादी हड़ताल किया जाएगा।

अगर देखा जाए, तो इस मामले में गलती केंद्र सरकार की है, क्योंकि पिछले दो वर्षों से ट्रेड यूनियनें श्रमिक हितों के सवाल पर आंदोलनरत हैं। बावजूद इसके सरकार ने इस पर संजीदगी नहीं दिखाई। यहां तक कि हड़ताल शुरू होने से पहले प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री ने भी यूनियन के

सच्चाई यह है कि दुनिया में कोई भी कंपनी अपने कर्मचारियों की वजह से घाटे में नहीं जाती और न ही बंद होती है। जब मुनाफा होता है, तो मजदूरों के योगदान को भुला दिया जाता है और जब नुकसान होने लगता है, तब छंटनी और वेतन रोकने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस परंपरा को बदलना होगा, क्योंकि गैर बराबरी की शुरूआत यहीं से होती है, जो बाद में गहरे असंतोष को जन्म देती है।

नेताओं से बात करना मुनासिब नहीं समझा।

मजदूर संगठनों में यूपीए सरकार के प्रति गुस्सा का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जंतर–मंतर पर 21 फरवरी को एटक महासचिव और सीपीआई सांसद गुरुदास दास गुप्ता ने यह पूछे जाने पर कि अब ट्रेड यूनियनों की आगे की रणनीति क्या होगी ? उनका जवाब था, कल संसद की कार्रवाई देखना। दासगुप्ता ने मजदूरों की जो बातें सड़क पर कही, वही बातें उन्होंने संसद में भी रखी। अपने 10 मिनट के संबोधन में उन्होंने प्रधानमंत्री, वित्त मंत्री और श्रम मंत्री की बखिया उधेड़कर रख दी और सदन में बैठे सप्रंग सरकार में मंत्री लज्जित भाव से कॉमरेड गुप्ता की बातें सुनते रहे। वहीं दूसरी ओर इस हड़ताल पर एसोचैम ने विलाप करते हुए कहा था कि इससे देश की अर्थव्यवस्था को 20 हजार करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है।

असल में, यह देश केंद्र व राज्य सरकारों की गलत आर्थिक नीतियों के दुष्चक्र में बुरी तरह फंस चुका है और इसी का परिणाम है कि भारत सरकार की आर्थिक नीतियां अब बड़े कॉरपोरेट घरानों और अमेरिका समेत अन्य विकसित देशों के अनुकूल बनाई जा रही हैं। हकीकत में, सरकार को इस बात से कोई सरोकार नहीं रह गया है कि विषम परिस्थितियों में हाड़–तोड़ मेहनत करने वाले श्रमिकों और चिथड़ों में लिपटे किसानों पर इसका क्या विपरीत प्रभाव पड़ेगा ?

वैसे ऐसोचौम, फिक्की और सीआईआई जैसे कॉरपोरेट संगठनों से इसी तरह के बयान की उम्मीद की जा सकती है, क्योंकि उनसे श्रमिक हितों की बात करना पूरी तरह बेमानी है। आश्चर्य की बात तो यह है कि एफडीआई के मुद्दे पर भी ये तीनों संगठन न सिर्फ सप्रंग सरकार की नीतियों को सही ठहरा रहे हैं, बल्कि वॉलमार्ट जैसी कंपनियों के लिए पलक पांवड़े बिछाए बैठी है।

असल में केंद्र और राज्य सरकारें टाटा, बिड़ला, मित्तल, जिंदल, अंबानी, गोयनका, डालमिया और सिंघानिया जैसे चंद मुट्ठीभर पूंजीपतियों को फायदा पहुंचाने के लिए दिन–रात परेशान रहती है, लेकिन अफसोस ये देश के उन करोड़ों खेतिहर मजदूरों और कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों को लेकर तनिक भी चिंतित नहीं हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि नब्बे के दशक से लागू नई आर्थिक नीतियों ने पूंजीपतियों को भरपूर फायदा पहुंचाया है। वहीं दूसरी ओर यह भी एक सच है कि मुल्क के करोड़ों किसानों और कामगारों को इस व्यवस्था ने सिवाय शोषण के और कुछ भी नहीं दिया है।

दरअसल, नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद न सिर्फ किसानों से उनकी पुश्तैनी जमीनें हड़पी गईं, बल्कि उनके परंपरागत कृषि कार्य में भी बहुराष्ट्रीय

कंपनियों का दखल लगातार बढ़ता ही चला गया। उन दिनों वित्त मंत्री रहे हमारे मौजूदा प्रधानमंत्री डॉक्टर मनमोहन सिंह ने नई आर्थिक नीतियों की खूब तरफदारी की थी और इसीलिए उन्होंने संसद में यह बयान भी दिया था कि इससे देश की करोड़ों जनता को लाभ होगा, लेकिन अफसोस! मेहनतकशों की जिंदगी पर इसका कोई सकारात्मक असर नहीं पड़ा, बल्कि उल्टा मजदूरों की जिंदगी में तमाम दुश्वारियां पैदा हो गईं हैं।

असल में, यह देश केंद्र व राज्य सरकारों की गलत आर्थिक नीतियों के दुष्चक्र में बुरी तरह फंस चुका है और इसी का परिणाम है कि भारत सरकार की आर्थिक नीतियां अब बड़े कॉरपोरेट घरानों और अमेरिका समेत अन्य विकसित देशों के अनुकूल बनाई जा रही हैं। हकीकत में, सरकार को इस बात से कोई सरोकार नहीं रह गया है कि विषम परिस्थितियों में हाड़–तोड़ मेहनत करने वाले श्रमिकों और चिथड़ों में लिपटे किसानों पर इसका क्या विपरीत प्रभाव पड़ेगा ?

पूरी दुनिया के मजदूरों के लिए मई दिवस बेहद अहम है, क्योंकि शोषण, दमन और गैर बराबरी के खिलाफ एक बड़ी कुर्बानी देने के बाद मजदूरों ने अपने लिए एक जगह बनाई। दुनिया का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहां मजदूरों को अपने हितों की लड़ाईयां न लड़नी पड़ी हो। काम के घंटे निर्धारित करने, बंधुआ मजदूरी की प्रथा को समाप्त करने और वेतन विसंगतियों को दूर करने की मांग को लेकर 127 साल पहले शुरू हुआ मजदूर आंदोलन आहिस्ता–आहिस्ता पूरी दुनिया में फैल गया।

हालांकि उसके बाद मजदूरों की स्थिति में कुछ सुधार जरूर हुआ, लेकिन उनकी समस्याएं पूरी तरह खत्म हो गईं, ऐसा नहीं है।

उदारीकरण के बाद औद्योगिक घरानों और राजनेताओं ने मजदूरों की हालत और भी दयनीय बना दी। नई आर्थिक नीतियों का असर सभी देशों पर पड़ा, लेकिन विकासशील देशों, खासकर भारत समेत अन्य दक्षिण एशियाई देशों के श्रमिकों की स्थिति दिन ब दिन खराब होती चली गई।

हालांकि यदि भारत की बात करें, तो यहां मजदूरों के हितों से जुड़ा पहला सवाल है न्यूनतम मजदूरी का। दूसरा सवाल ठेकेदारी प्रथा को बंद करने का है और तीसरा सवाल है उनकी बुनियादी सुविधाओं को लेकर। इन्हीं मुद्दों पर ट्रेड यूनियनें सरकारों को घेरती है, लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि सरकार भी चतुर–सुजान और मौकापरस्त है, इसीलिए मजदूरों को उनका वाजिब हक देना तो दूर, उन्हें न्यूनतम मजदूरी भी नहीं दी जा रही है।

हैरानी की बात तो यह है कि श्रमिकों से ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार भी छीना जा रहा है। भारत में मजदूरों और ट्रेड यूनियनों की मांगों को सरकार अनसुनी कर देती है, जबकि पहले ऐसी स्थिति नहीं थी। इसके लिए कुछ हद तक ट्रेड यूनियनें भी जिम्मेदार हैं।

देश में विभिन्न राजनीतिक दलों से जुड़ी करीब 15 ट्रेड यूनियनें हैं। ये वैचारिक और क्षेत्रीय स्तरों पर भी बंटे हुए हैं, जबकि इनके बीच एक शीर्ष निकाय का होना बेहद जरूरी है। ब्रिटेन, जर्मनी, अमेरिका, जापान, न्यूजीलैंड और यहां तक कि पाकिस्तान में भी ट्रेड यूनियनों का एक केंद्रीय मंच है, जो श्रमिकों से जुड़े मुद्दों पर सरकार से सीधी बात करता है।

भारत में असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की संख्या करीब 93 प्रतिशत है, जिसे पेंशन, भविष्य निधि, अवकाश और चिकित्सीय सुविधाएं भी हासिल नहीं है। हालांकि संगठित क्षेत्रों के मजदूरों जिनकी संख्या महज पौने तीन करोड़ है, उनकी हालत में बेशक सुधार हुआ है, लेकिन यहां नई नियुक्तियों की बजाय अनुबंध पर कार्य कराने का चलन बढ़ गया है।

एक आंकड़े के मुताबिक, भारत में कुल श्रम शक्ति करीब 48 करोड़ है। इनमें से 7 फीसदी ही संगठित क्षेत्र में काम करते हैं और ट्रेड यूनियनों की 70 फीसदी सदस्यता भी इसी से जुड़ी हुई है। मौजूदा दौर में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों की हालत काफी दयनीय है। चाहे वे बीड़ी मजदूर हों या दैनिक मजदूर, फुटपाथों पर फलों की रेहड़ी लगाने वाला हो या फिर रिक्शा, ठेला और तांगा चलाने वाले मजदूर। सिर्फ दिल्ली में ही उनकी संख्या करीब 5 लाख है, जबकि पूरे देश में इनकी संख्या करोड़ों में है। वैसे तो, मजदूरों के कल्याण के लिए अर्जुन सेन गुप्ता आयोग के अलावा, कई दूसरी समितियां भी बनीं।

दरअसल, उन आयोगों ने अपनी रिपोर्ट भी सरकार के समक्ष पेश की, लेकिन दुख तो इस बात का है कि आज तक उस पर कोई अमल नहीं हो पाया है। उल्लेखनीय है कि जब किसी उद्योगपति का कारोबार मंदा पड़ता है, तब सरकार आर्थिक पैकेज देकर उसे संकटों से उबार लेती है, लेकिन जब मजदूर अपने उचित अधिकारों की मांग करता है, तो उसे सिर्फ झूठा आश्वासन ही मिलता है। ❑

बेरोजगारी

रोजगारविहीन विकास की त्रासदी

हाल ही में सरकार द्वारा स्वीकार किए गए आंकड़ों के हिसाब से देश में स्वरोजगार में खासी कमी आई। सरकार ने माना है कि 2004–05 में 25.8 करोड़ लोग स्वरोजगार युक्त थे, जो 2009–10 में घटकर मात्र 23.3 करोड़ ही रह गए। यानि ढ़ाई करोड़ लोग स्वरोजगार से बाहर हो गए। ये वो लोग थे, जो अपनी खेती करते थे, अपनी दुकान अथवा फैक्ट्री चलाते थे या कोई अन्य छोटा–बड़ा धंधा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपना काम करने वाले स्वरोजगार युक्त लोग केवल खुद के लिए नहीं, दूसरों के लिए भी रोजगार उपलब्ध कराते हैं।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 66वें दौर की रपट को अंतोत्गत्वा सरकार ने भी मान लिया है। गौरतलब है कि लगभग 20 माह पहले राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने अपनी रपट में यह कहा था कि वर्ष 2004–05 से 2009–10 के बीच देश में रोजगार बढ़ने की गति धीमी हुई है, स्वरोजगार में लगे लोगों की संख्या में भारी कमी आई है और आकस्मिक श्रमिकों की संख्या कहीं ज्यादा तेजी से बढ़ी हैं। उस समय योजना आयोग के अध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलुवालिया ने अपने ही राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की रपट को नकारते हुए उसे गलत करार दिया था। लेकिन अब वित्त मंत्रालय की स्थाई संसदीय समिति के सवाल के जबाव में योजना मंत्रालय ने यह स्वीकार किया है कि भारत में रोजगार सृजन की गति में कमी आई है और स्वरोजगार घटा है।

नई आर्थिक नीति के बाद से बढ़ी बेरोजगारी

सवाल 2004–05 से 2009–10 के मात्र 5 वर्षों के बीच बेरोजगारी के बढ़ने का नहीं है। वास्तव में 1990–91 के बाद जब से नई आर्थिक नीति का आगाज हुआ है, देश में बेरोजगारी की बढ़ने की रफ्तार पहले से कहीं ज्यादा तेज हो गई है। गौरतलब है कि 1993–94 में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की दर 5.6 प्रतिशत थी और शहरी क्षेत्रों में 7.4 प्रतिशत (चालू दैनिक स्थिति के आधार पर)। 1999–2000 में यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में बढ़कर क्रमशः 7.2 प्रतिशत और 7.7 प्रतिशत हो गई। 2004–05 में यह बढ़कर शहरों और गांवों दोनों में 8.3 प्रतिशत तक पहुंच गई। हैरानी का विषय यह है कि सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2004–05 और 2009–10 के बीच रोजगार बढ़ने की गति पहले से कहीं कम थी, लेकिन बेरोजगारी की दर गांवों और शहरों में घटकर क्रमशः मात्र 6.8 और 5.8 प्रतिशत ही दिखाई गई। नमूना सर्वेक्षण संगठन का तर्क यह था कि हालांकि रोजगार बढ़ने की गति तो कम हुई है, लेकिन साथ ही श्रम बाजार में नए आगन्तुकों की संख्या इन पांच सालों में पहले से कहीं कम थी। कारण यह बताया गया कि इस दौरान स्कूल और कालेजों में ज्यादा बालक–बालिकाएं पढ़ने लगी थी, इसलिए वे इस दौरान श्रम बाजार में दाखिल नहीं हुए। यह तर्क मान भी लिया जाए तो भी अगले पांच सालों में यह स्थिति रहने वाली नहीं है।

घटता हुआ रोजगार का स्तर

हाल ही में सरकार द्वारा स्वीकार किए गए आंकड़ों के हिसाब से देश में स्वरोजगार में खासी कमी आई। सरकार ने माना है कि 2004–05 में 25.8 करोड़ लोग स्वरोजगार युक्त थे, जो 2009–10 में घटकर मात्र 23.3 करोड़ ही रह गए। यानि ढ़ाई करोड़ लोग स्वरोजगार से बाहर हो गए। ये वो लोग थे, जो अपनी खेती करते थे, अपनी दुकान अथवा फैक्ट्री चलाते थे या कोई अन्य छोटा–बड़ा धंधा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपना काम करने वाले स्वरोजगार युक्त लोग केवल खुद के लिए नहीं, दूसरों के लिए भी रोजगार उपलब्ध कराते हैं। ऐसे में मात्र 5 वर्षों में ढ़ाई करोड़ लोगों का स्वरोजगार से बाहर होना अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा संकेत नहीं है।

यही नहीं कि ढ़ाई करोड़ लोग रोजगार से बाहर हुए, सरकार ने माना है कि आकस्मिक श्रमिकों की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई है। जहां 2004–05 में 12. 97 करोड़ आकस्मिक श्रमिक थे, वह संख्या 2009–10 में बढ़कर 15.13 करोड़ हो गई। यानि लगभग 2 करोड़ 15 लाख लोग आकस्मिक श्रमिक बन गए। स्वरोजगार में लगे ढ़ाई करोड़ लोगों में से 2.15 करोड़ लोगों का आकस्मिक श्रमिक बन जाना, जाहिरतौर पर रोजगार के घटते स्तर को इंगित कर रहा है। गौरतलब है कि आकस्मिक श्रमिकों को सामान्यतौर पर अत्यंत कम मजदूरी मिलती है और उनको पूरे साल काम भी

नहीं मिलता है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार आकस्मिक श्रमिकों की मजदूरी 100 से 150 रूपए प्रतिदिन होती है, जबकि उनको साल में लगभग 100 दिन काम मिलता है। नरेगा सरीखी सरकार की अपनी स्कीमों में भी आकस्मिक श्रमिकों को मात्र 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का ही प्रावधान है। ऐसे में स्पष्ट है कि गरीब लोगों की आमदनियां पहले से घटी हैं और कम से कम बढ़ी तो बिल्कुल नहीं है।

सरकार इस बात पर अपनी पीठ थपथपाने की कोशिश कर रही है कि अर्थव्यवस्था में वेतनभोगियों की संख्या 1. 52 करोड़ से बढ़कर 1.64 करोड़ हो गई है, यानि 5 वर्षों में 1.2 करोड़ लोगों को अब स्थाई वेतन वाला रोजगार मिलने लगा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि वेतनभोगी लोगों की आमदनियां समानरूप से नहीं बढ़ी हैं। बड़ी संख्या में इस प्रकार के स्थाई रोजगार पाने वाले लोगों की तनख्वाएं अब भी बहुत नीचले स्तर पर है। अधिकतर वेतनभोगी कार्मिक ठेके पर काम करते हैं और उनकी नौकरियों में स्थायित्व भी नहीं होता और वेतन के बढ़ने का निश्चित प्रावधान भी नहीं होता। हाल ही में मारूति उद्योग में हुई हड़ताल के बाद मारूति प्रबंधन ने स्वयं स्वीकार किया था कि बड़ी संख्या में उनके कर्मचारी ठेके पर काम करते हैं, जिनके वेतन अन्य कर्मचारियों के एक तिहाई भी नहीं हैं।

क्या यही है सर्वसमावेशी विकास

वर्तमान यूपीए सरकार का यह दावा रहा है कि वे सर्वसमावेशी विकास के समर्थक हैं। इसका मतलब है एक ऐसा विकास जिसमें सभी वर्गों को लाभ हो, खासतौर पर गरीब और वंचित की आमदनियां और जीवन स्तर बढ़े। लेकिन देश में रोजगारविहीन आर्थिक संवृद्धि किसी भी हालत में सर्वसमावेशी नहीं कही जा सकती। गौरतलब है कि दसवीं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान जीडीपी बढ़ने की दर लगभग 8 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है। लेकिन इसके बावजूद सरकारी की स्वीकारोक्ति के अनुसार रोजगार में 5 वर्षों में मात्र 0.3 प्रतिशत की वृद्धि ही दर्ज हुई है, यानि 0.06 प्रतिशत प्रतिवर्ष। वर्ष 2012–13 का आर्थिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए सरकार ने यह कहा था कि देश को जनसांख्यिकी लाभांश लेना है। इसका मतलब यह है कि आज देश के पास दुनिया की सबसे बड़ी युवा शक्ति है। उसका पूरा उपयोग करते हुए भारत को दुनिया का सिरमौर देश बनना है।

वास्तविकता यह है कि वेतनभोगी लोगों की आमदनियां समानरूप से नहीं बढ़ी हैं। बड़ी संख्या में इस प्रकार के स्थाई रोजगार पाने वाले लोगों की तनख्वाएं अब भी बहुत निचले स्तर पर है। अधिकतर वेतनभोगी कार्मिक ठेके पर काम करते हैं और उनकी नौकरियों में स्थायित्व भी नहीं होता और वेतन के बढ़ने का निश्चित प्रावधान भी नहीं होता। हाल ही में मारूति उद्योग में हुई हड़ताल के बाद मारूति प्रबंधन ने स्वयं स्वीकार किया था कि बड़ी संख्या में उनके कर्मचारी ठेके पर काम करते हैं, जिनके वेतन अन्य कर्मचारियों के एक तिहाई भी नहीं हैं।

नीतियों को बदलना होगा

लेकिन जब रोजगार के बढ़ने की गति मात्र 0.06 प्रतिशत ही हो तो यह सपना कैसे साकार हो सकता है। केवल लफ्फाजी से या नारों से देश महान नहीं बनते, उसके लिए उचित नीतियों की जरूरत होती है। जब सरकार में बैठे लोग लगातार 20 वर्षों तक रोजगारविहीन विकास की प्रवृत्तियों को अनदेखा करते हैं, तो विकास सर्वसमावेशी नहीं हो सकता। रोजगार विहीन विकास संबंधी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की रपट को पहले नकार देना और 20 महीनों तक उस पर कोई प्रतिक्रिया न आना और उसके बाद भी संसदीय समिति द्वारा पूछे जाने पर सवाल का मात्र जबाव भर देना, सरकार में बैठे लोगों की गरीब और बेरोजगार के प्रति संवेदनहीनता को ही प्रकट करता है। सरकार में बैठे लोग आज देश की हर समस्या का समाधान विदेशी निवेश में खोज रहे हैं। पिछले 20 वर्षों में विदेशी निवेश बढ़ा है, लेकिन साथ ही साथ देश के संसाधनों पर विदेशियों का आधिपत्य भी बढ़ा है। देश पर विदेशी कर्ज जो 1990–91 में मात्र 83.8 अरब डालर था, दिसम्बर 2012 तक बढ़कर 374 अरब डालर तक पहुंच चुका है। यह सब सहा जा सकता है, जब देश में गरीब की हालत में सुधार हो और उसे रोजगार मिले। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा।

आज भी बेरोजगार सरकार की नरेगा स्कीम के भरोसे साल में 100 दिन का रोजगार पाते हैं। जरूरी है कि आज देश में श्रम प्रधान उत्पादन के साधनों को अपनाया जाए, लघु और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए, कृषि की अनदेखी को समाप्त करते हुए गांवों में श्रम प्रधान खाद्य प्रसंस्करण (फूड प्रोसेसिंग) उद्योगों को स्थापित करने सरीखे प्रयास करने की जरूरत है। तभी हम जनसांख्यिकी लाभांश ले पाएंगे। ❑

गंगा की चिंता का दिखावा

सफारिश का यह तात्कालिक आधार गंगा की धाराओं पर कई और परियोजनाओं की मंजूरी के रास्ते खोलेगा। यह विरोधाभास ही रिपोर्ट की मंशा पर शक पैदा करता है। विरोध इसलिए भी है कि रिपोर्ट यह नहीं कहती कि गंगा को बचाया जाए, बल्कि वह कहती है कि नदी को 60 प्रतिशत से अधिक प्रभावित न किया जाए। इसका मतलब दुष्प्रभावित न करने से है यानी रिपोर्ट 60 फीसद गंगा के सत्यानाश की इजाजत देती है।

गंगा पर गठित अंतरमंत्रालयी समूह की रिपोर्ट लागू करने पर अंतिम निर्णय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्यरत राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण लेगा। फैसला जो भी हो, सच्चाई यह है कि इस रिपोर्ट की संस्तुतियां गंगा के पर्यावरणीय प्रवाह और शुद्धता को नहीं बचा पाएंगी। यह गंगा का पर्यावरणीय प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए बने समूह की बजाय बांध लॉबी की रिपोर्ट लगती है। रिपोर्ट समूह गठन के मूल उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती। समूह के दूसरे गैरसरकारी सदस्य महंत वीरभद्र मिश्र अब जीवित नहीं हैं। तीसरी गैरसरकारी सदस्य सुनीता नारायण ने पर्यावरणीय प्रवाह को लेकर जो मानक सुझाया था उसे नामंजूर करने के कारण रिपोर्ट से उनकी पूरी सहमति की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए। यह रिपोर्ट प्रदूषण मुक्ति पर कोई निर्णायक रास्ता सुझाने में भी विफल रही है।

रिपोर्ट के जिस बिंदु को लेकर सबसे

■ राजेन्द्र सिंह

कड़ा विरोध है वह है – पर्यावरणीय प्रवाह का निर्धारण। दुनिया में इसके निर्धारण के लगभग दो सौ तरीके हैं। आंदोलकारियों

की तरफ से गंगा के लिए दो तरीके सुझाए जाते रहे हैं– फ्लो डयुरेशन कर्व एप्रोच और बिल्डिंग ब्लॉक मेथेडोलॉजी। इन्हीं के आधार पर गंगा में हर क्षण, हर जगह इसके नैसर्गिक प्रवाह का कम से कम 50 प्रतिशत जल हमेशा बहते रहने की मांग की जाती रही है।

दिलचस्प है कि रिपोर्ट भी मानती है कि लंबे समय में पर्यावरणीय प्रवाह का निर्धारण बिल्डिंग ब्लॉक मेथेडोलॉजी से ही किया जाए, लेकिन उसने अपनी तात्कालिक सिफारिशों का आधार मीन सीजनल फ्लो एप्रोच को बनाया है।

इसके आधार पर समूह नदी के मछली क्षेत्र में अक्टूबर–नवंबर और अप्रैल–मई में 25 प्रतिशत, जून से सितंबर के दौरान 20 प्रतिशत और दिसंबर से मार्च के दौरान 30 प्रतिशत अविरल प्रवाह की सिफारिश करता है।

गैर मछली क्षेत्र में अप्रैल से सितंबर के दौरान 20 प्रतिशत और अक्टूबर से मार्च

प्रश्न यही है कि दूसरों को बिजली देने के लिए उत्तराखंड अपनी नदी, जंगल, पहाड़ और आबोहवा को बर्बाद क्यों करे? नीरी की एक रपट के मुताबिक जो तलछट पीछे से भगीरथी में आता है उसका 90 प्रतिशत टिहरी बांध की झील में बैठ जाता है। मात्र 10 फीसद ही आगे जाता है। मात्र एक बांध के कारण आगे आने वाले गंगाजल के अमृत होने की संभावना अभी ही 10 फीसद शेष रह गई है, रिपोर्ट लागू होने के बाद वह भी नहीं बचेगी। ऋषिकेश की गंगा में जल तो होगा, अमृत नहीं।

के दौरान 30 प्रतिशत की सिफारिश करता है। दिसंबर से मार्च के बीच इस प्रतिशत को बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक किए जाने की सिफारिश भी समूह ने की है, लेकिन सिर्फ स्नान पर्व आदि सामाजिक जरूरत के लिए।

सिफारिश का यह तात्कालिक आधार गंगा की धाराओं पर कई और परियोजनाओं की मंजूरी के रास्ते खोलेगा। यह विरोधाभास ही रिपोर्ट की मंशा पर शक पैदा करता है। विरोध इसलिए भी है कि रिपोर्ट यह नहीं कहती कि गंगा को बचाया जाए, बल्कि वह कहती है कि नदी को 60 प्रतिशत से अधिक प्रभावित न किया जाए। इसका मतलब दुष्प्रभावित न करने से है यानी रिपोर्ट 60 फीसद गंगा के सत्यानाश की इजाजत देती है। अलकनंदा, भगीरथी, मंदाकिनी, धौलीगंगा, नंदाकिनी और पिंडर–ये छह नदियां मिलकर उत्तराखंड के पवित्र पंचप्रयाग बनाती हैं। मांग थी कि कम से कम इन्हें तो बचाकर रखा जाए। इन पर भविष्य में किसी और बांध परियोजना को मंजूरी न दी जाए। रिपोर्ट ने धौलीगंगा के बारे में तो यह सिफारिश की, लेकिन शेष की अनदेखी कर दी गई।

रिपोर्ट का गोलमोल रवैया भी विरोध का एक कारण है। रिपोर्ट नहीं बताती कि दो परियोजनाओं के बीच की दूरी कितनी हो। रिपोर्ट कहती है कि भीड़ न होने पाए। रिपोर्ट 25 मेगावाट से छोटी परियोजनाओं के बारे में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देती। परियोजना में संशोधन व डिजाइन में बदलाव की एवज में बड़ी परियोजना को बिजली दर बढ़ाने की इजाजत देती है। कितनी? इस पर कोई स्पष्टता नहीं है।

औद्योगिक इकाइयां नदी से न्यूनतम कितनी दूर रहें, इस संबंध में रिपोर्ट यह कहकर पिंड छुड़ा लेती है कि महाराष्ट्र

निगरानी तंत्र के विकास और संचालन का जिम्मा बड़ी चालाकी से उस परियोजना कंपनी को ही दे दिया गया है जिससे प्रवाह प्रभावित होने का खतरा है। यानी चोर से कहो कि वह खुद दर्ज करे कि उसने कब–कब चोरी की।

और तमिलनाडु राज्यों की अधिसूचनाओं को आदर्श मानकर गंगा में अवजल छोड़ने वाली सभी इकाइयों के संदर्भ में दूरी का नियम लागू किया जाए। रिपोर्ट जीरो डिस्चार्ज के बारे में कोई साफ निर्देश नहीं देती।

इसके अनुसार महाराष्ट्र उदाहरण को जांचकर गंगा बेसिन में दोहराया जाए। रिपोर्ट के मुताबिक पर्यावरणीय प्रवाह की निगरानी स्वतंत्र समूह करेगा। प्रथम पांच वर्ष तक वार्षिक समीक्षा पर्यावरण मंत्रालय द्वारा की जाएगी, लेकिन उसके नियमित इलेक्ट्रॉनिक निगरानी तंत्र के विकास और संचालन का जिम्मा बड़ी चालाकी से उस परियोजना कंपनी को ही दे दिया गया है जिससे प्रवाह प्रभावित होने का खतरा है।

अलकनंदा, भगीरथी, मंदाकिनी, धौलीगंगा, नंदाकिनी और पिंडर–ये छह नदियां मिलकर उत्तराखंड के पवित्र पंचप्रयाग बनाती हैं। मांग थी कि कम से कम इन्हें तो बचाकर रखा जाए। इन पर भविष्य में किसी और बांध परियोजना को मंजूरी न दी जाए। रिपोर्ट ने धौलीगंगा के बारे में तो यह सिफारिश की, लेकिन शेष की अनदेखी कर दी गई।

यानी चोर से कहो कि वह खुद दर्ज करे कि उसने कब–कब चोरी की। वाराणसी में गंगा में आने–वाले कचरे की सफाई को लेकर संकटमोचन फाउंडेशन द्वारा बिना बिजली के गुरुत्वाकर्षण आधारित प्रणाली का प्रस्ताव दिया गया था।

गंगा योजना बना रहे आईआईटी संकाय के संयोजक विनोद तारे के मुताबिक अब तक हुए कई अध्ययनों में से वह प्रणाली एक भी अध्ययन पर खरी नहीं उतरी है। बावजूद इसके रिपोर्ट सिफारिश करती है कि राष्ट्रीय गंगा स्वच्छता मिशन उसे विशेष परियोजना के तौर पर लागू करे। यह भी रिपोर्ट की नीयत पर शक पैदा करता है।

रिपोर्ट कहती है कि कुल 69 प्रस्तावित परियोजनाएं भगीरथी को 81 प्रतिशत और अलकनंदा को 65 प्रतिशत प्रभावित करेंगी। इनकी विद्युत उत्पादन क्षमता 9,020 मेगावाट है। अधर में लटकी होने के कारण श्रीनगर परियोजना की 330 मेगावाट क्षमता इसमें शामिल नहीं है। रिपोर्ट 6,942 मेगावाट से अधिक उत्पादन को अनुमति देने के पक्ष में है।

रिपोर्ट कुछ भी कहती हो, प्रश्न यही है कि दूसरों को बिजली देने के लिए उत्तराखंड अपनी नदी, जंगल, पहाड़ और आबोहवा को बर्बाद क्यों करे? नीरी की एक रपट के मुताबिक जो तलछट पीछे से भगीरथी में आता है उसका 90 प्रतिशत टिहरी बांध की झील में बैठ जाता है। मात्र 10 फीसद ही आगे जाता है। मात्र एक बांध के कारण आगे आने वाले गंगाजल के अमृत होने की संभावना अभी ही 10 फीसद शेष रह गई है, रिपोर्ट लागू होने के बाद वह भी नहीं बचेगी। ऋषिकेश की गंगा में जल तो होगा, अमृत नहीं। ❑

आपसी रिश्ते

भेड़ियों के बीच सिंह की मौत

इन कटु अनुभवों के बावजूद अगर हम मृगमरीचिका के पीछे भागते रहे तो दोष किसका है? इस तरह की सरकारों के किसी वायदे पर भी भरोसा करना व्यावहारिक नहीं होता है। बताया जाता है कि भारतीय राष्ट्र जमाने से समरनैतिक व्यवहार भूल चुका है और जब पानी सिर से गुजर जाता है तो उसे अपने बचाव की याद आती है। तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। यह जान लेना चाहिए कि पाकिस्तान अब एक आतंकवादी सरकार की तरह व्यवहार करने लगा है। उसके साथ अलग तरह की कूटनीति के विकास की आवश्यकता है।

■ जवाहरलाल कौल

जिस बात का सबको डर था वहीं हो गई और सरबजीत सिंह की मौत हो गई। पाकिस्तान ने जिंदा रहते उसे वापस अपने देश आने नहीं दिया। 26 अप्रैल को

सरबजीत को पाकिस्तान के कोट लखपत जेल में पांच कैदियों ने ईटों, छड़ों और ब्लेड से मार–मारकर लहूलुहान कर दिया था। उसका सिर फट गया था और बेहोशी की हालत में उसे जिन्ना अस्पताल में भरती कराया गया था। यह भारतीय नागरिक भूल से पाकिस्तान की सीमा के अंदर चला गया था जहां उसे गिरफ्तार किया गया और जासूसी के आरोप पर जेल में डाल दिया गया। बाद में लाहौर में बम धमाके कराने के मनगढंत आरोपों पर उसे 1991 में फांसी की सजा सुना दी गई थी। लेकिन परिवार और कई भारतीय व पाकिस्तानी संगठनों की दया याचिकाओं को ठुकराते हुए पाकिस्तान सरकार उसे राजनैतिक मोहरे के तौर पर अपने तथाकथित उच्च सुरक्षा जेल में जीवित रखे हुए थी।

कई कैदियों ने बिना किसी झगड़े के ही उस पर नियोजित आक्रमण किया जिसका उद्देश्य ही उसे जान से मारना था। सवाल उठता है कि क्या यह हमला केवल जेल के कुप्रबंधन और अनुशासन के उल्लंघन का ही परिणाम था, या इसके पीछे बड़े अधिकारियों का भी हाथ था? कोट लखपत पाकिस्तान की उन जेलों में से है जिसमें ऐसे कैदियों को रखा जाता है जिनको अधिकतम सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

लेकिन जहां तक सरबजीत का सवाल है उसे ऐसे हर मौके पर मारा–पीटा जाता था, जब भारत–पाकिस्तान के बीच कोई विवाद गहराता हो। इस बात के समाचार पाकिस्तानी मीडिया के ही माध्यम से बाहर आते थे। सरबजीत के परिवार वालों को डर था कि उसकी जान को पाकिस्तानी जेल में खतरा है।

बताया जाता है कि अफजल गुरु को फांसी पर चढ़ाने के बाद से तो सरबजीत को हर दिन दूसरे कैदियों से खतरा बढ़ गया था। साफ है कि इस बात की जानकारी जेल अधिकरियों को थी और वे इसकी अनदेखी कर रहे थे। अफजल की फांसी के बाद शायद पाकिस्तान के अधिकारियों को लगा होगा कि भारतीय जेलों से पाकिस्तानी अपराधियों को छुड़ाने में सरबजीत की उपयोगिता समाप्त हो गई है।

ऐसे में यह संदेह बेबुनियाद नहीं है कि सरबजीत की मौत शायद कई दिन पहले ही हो गई हो और जब उसकी बहन लाहौर पहुंची थीं तो वह मर चुके थे। उन्हें वेंटिलेटर से हटाने की तैयारियां हो रहीं थीं। जब भी वे अपने भाई की हालत के बारे में जानकारी लेने की कोशिश कर रही थीं तो जिस तरह का व्यवहार उनके साथ होता था उससे लग रहा था कि उनका भाई जीवित नहीं है।

शायद इसी संदेह के कारण सरबजीत की पाकिस्तान में शव परीक्षा के बाद भी भारत में फिर से शव परीक्षा कराने की

योजना है। सरबजीत पर हमले के बाद उनके परिवार के सदस्यों ने उनकी हत्या में पाकिस्तान सरकार पर मिलीभगत का आरोप लगाया है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि सरबजीत सिंह को फांसी की सजा सुना दी गई थी और नियम के अनुसार उसे एक ऐसी सेल में रखा जाना था जिस तक अधिकार संपन्न अधिकारी को छोड़कर किसी की भी पहुंच न हो। यह अंतरराष्ट्रीय नियम है।

भाजपा के नेता अरुण जेटली ने संसद में बताया कि ''जिसे फांसी की सजा दी जानी हो उसकी सेल में परिंदा भी पर नहीं मार सकता, तो पाकिस्तान का यह दावा कि यह काम गैर सरकारी व्यक्तियों ने किया है, विश्वास के योग्य नहीं है।''

ऐसे में सरबजीत पर हमला दो ही सूरतों में हो सकता था– या तो अधिकारियों ने उन हत्यारों को जान–बूझकर सेल में प्रवेश करने दिया या सरबजीत को ही बाहर ले आए।

अपने बयान में जेटली ने बताया कि उन्हें शर्म आती है कि उनका देश एक भारतीय नागरिक को बचाने में इतना लाचार साबित हुआ। यह बयान लगभग हर उस भारतीय की भावनाओं को व्यक्त करता है जिसे इस बात का अहसास है कि पाकिस्तान की अमानवीय हरकतों के सामने भारत सरकार किस प्रकार समर्पण की मुद्रा में आती रही है।

बहुत दिन नहीं बीते जबकि हमारे दो जवानों को सरहद पार करके मारा गया और उनमें से एक का सिर काट लिया गया। इन घटनाओं से एक सवाल लोगों के मन को मसोस रहा है कि क्या पाकिस्तान के साथ बातचीत का कोई लाभ हमें मिला है। बातचीत का सिलसिला अटल बिहारी वाजपेयी के समय आरंभ हुआ लेकिन न तो हम करगिल पर हमला टाल सके और न ही सियाचिन का कोई फैसला कर पाए।

गुजरात में सरक्रीक पर भी हमें पाकिस्तान के सामने कोई सफलता नहीं मिली। पाकिस्तान के साथ हमारी राजनयिक विफलता का प्रभाव हमारे अन्य पड़ोसियों पर भी पड़ता रहा है। इसलिए पाकिस्तान के साथ अपने रिश्तों की नए सिरे से समीक्षा करने की आवश्यकता आ पड़ी है। इस बात को मान लेना ही उचित है कि जो कूटनीति हमने अब तक अपनाई है उसकी कोई उपयोगिता साबित नहीं हो पाई है।

भाजपा के नेता अरुण जेटली ने संसद में बताया कि ''जिसे फांसी की सजा दी जानी हो उसकी सेल में परिंदा भी पर नहीं मार सकता, तो पाकिस्तान का यह दावा कि यह काम गैर सरकारी व्यक्तियों ने किया है, विश्वास के योग्य नहीं है।'' ऐसे में सरबजीत पर हमला दो ही सूरतों में हो सकता था– या तो अधिकारियों ने उन हत्यारों को जान–बूझकर सेल में प्रवेश करने दिया या सरबजीत को ही बाहर ले आए।

इस सिलसिले में यह समझना होगा कि पाकिस्तान में सरकार कहने को राजनैतिक दलों की ही बनती है लेकिन उस पर नियंत्रंण केवल सेना और आतंकवादी संगठनों का ही होता है। सरबजीत के मामले में भी आतंकवादी दबदबे की छाप दिखाई देती है। जिन दो भारतीय सैनिकों को कश्मीर की सीमा पर मारा गया था, पाक रेंजरों ने किसी के कहने पर ही वह काम किया था। उसके ठीक एक दिन पहले एक आतंकवादी संगठन का सरगना सीमा क्षेत्र में दौरे पर आया था और उस ने ही रेंजरों को उकसाया था। महत्वपूर्ण बात है कि पाकिस्तानी सरकार इसे न तो रोक पाई और ही अनुशासनहीनता के लिए अपने रेंजरों को दंडित कर पाई।

सरबजीत के बारे में पाकिस्तान की दलील है कि उस पर गैरसरकारी लोगों ने हमला किया। पहली नजर में इस पर विश्वास करना आसान नहीं है। लेकिन अगर विश्वास हो जाए तो मामला और भी गंभीर हो जाता है। अगर अतिसुरक्षित सेल में गैरसरकारी तत्व यानी आतंकवादी पहुंच जाते हैं, फिर या तो उन्हें वहां सरकार की देख–रेख में पहुंचाया गया या फिर जेल अधिकारियों पर उनका इतना असर है कि सरकार चाहकर भी उन्हें नहीं रोक सकती है। ऐसी सरकार को किसी शांति प्रस्ताव पर कैसे सहमत कराया जा सकता है?

इन कटु अनुभवों के बावजूद अगर हम मृगमरीचिका के पीछे भागते रहे तो दोष किसका है? इस तरह की सरकारों के किसी वायदे पर भी भरोसा करना व्यावहारिक नहीं होता है। बताया जाता है कि भारतीय राष्ट्र जमाने से समरनैतिक व्यवहार भूल चुका है और जब पानी सिर से गुजर जाता है तो उसे अपने बचाव की याद आती है। तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

सरबजीत सिंह की इस हत्या के बाद भारत सरकार का समरनैतिक विवेक जग जाना चाहिए और उसे उसी मुहावरे में बात करनी चाहिए जिसे दूसरे समझते हों। यह जान लेना चाहिए कि पाकिस्तान अब एक आतंकवादी सरकार की तरह व्यवहार करने लगा है। उसके साथ अलग तरह की कूटनीति के विकास की आवश्यकता है। ❑

महंगाई की दवाई बनाम आरबीआई

रिजर्व बैंक ने साफ कर दिया है कि महंगाई को घटाना सिर्फ उसके बूते की बात नहीं है। पर जब तक महंगाई और नीचे नहीं होगी, ब्याज दरों में कमी की उम्मीद रिजर्व बैंक से न की जाए। रिजर्व बैंक अपनी जगह बिलकुल ठीक है। पर केंद्र सरकार और राज्य सरकारों का क्या किया जाए, जिन्हें ठीक और गलत के हिसाब से नहीं, चुनावी साल में चुनावी अंकगणित से काम करना होता है।

■ आलोक पुराणिक

रिजर्व बैंक ने 3 मई, 2013 को जो किया है, वह यह किया है कि जो बैंक रिजर्व बैंक से उधार लेना चाहेंगे, उन्हें थोड़ा सस्ता कर्ज मिलेगा। ब्याज की दर यानी रेपो रेट 7.5 प्रतिशत से गिराकर 7.25 प्रतिशत कर दी गई है। यानी थोड़ी–सी बचत बैंकों को हो सकती है। लेकिन यह बचत इतनी कम है कि कोई बैंक इस आधार पर ब्याज दरों को गिराने को तैयार नहीं है। यानी आम आदमी के लिए आशय यह है कि उसके कार, मकान के लोन की ईएमआई कम होने के आसार नहीं हैं।

उद्योग जगत की मांग थी कि रिजर्व बैंक ऐसे संकेत दे, जिनसे बैंकों को ब्याज दर कम करने में मदद मिले। ब्याज दरें कम हों, घर– मकान की ईएमआई कम बने, सस्ती हो, तो इनकी बिक्री बढ़े। कंस्ट्रक्शन और ऑटो उद्योग में गरमी आए, तो फिर पूरी इकोनोमी चहके। इस आशय की मांगें तमाम उद्योग संगठन करते रहे हैं।

उद्योग संगठनों के अलावा देश के वित्तमंत्री पी चिदंबरम भी इस आशय की मांग करते रहे हैं। एक मांग रिजर्व बैंक से यह थी कि कैश रिजर्व रेशो या नकदी आरक्षित अनुपात में कमी करे। नकदी आरक्षित अनुपात वह होता है, जो बैंकों को अपने डिपाजिट्स में से निकालकर रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। अभी यह अनुपात चार प्रतिशत है। अगर इसमें गिरावट होती तो बैंकों को रिजर्व बैंक के पास नकद कम रखना होता, यानी बैंकों के पास नकद ज्यादा होता। बैंकों के पास अगर कैश ज्यादा है, तो वह उसे बतौर

कर्ज देना चाहेंगे, ताकि उस पर ब्याज के बतौर आमदनी हो सके। ज्यादातर बैंक अगर कर्ज देने की दौड़ में लगेंगे, तो जाहिर है कि ब्याज दर गिरेगी। पर रिजर्व बैंक फिलहाल सस्ती ब्याज दरों के समर्थन में नहीं है।

ब्याज दरों में गिरावट की मांग को रिजर्व बैंक लंबे अरसे से खारिज करता आ रहा है। इसके पीछे रिजर्व बैंक के अपने तर्क हैं। रिजर्व बैंक का कहना है कि महंगाई का जो हाल हो गया है, उसमें कर्ज के ब्याज को कम किया गया तो महंगाई बढ़ने के आसार हैं। रिजर्व बैंक महंगाई को लेकर बहुत ही चिंतित है, इतना ज्यादा कि इस नीति की घोषणा के बाद एक साक्षात्कार देते हुए रिजर्व बैंक के गवर्नर सुब्बाराव ने कहा कि वह इनफ्लेशन यानी महंगाई के गवर्नर हैं। मतलब वह यह संकेत देना चाह रहे हैं कि उनकी अभी की चिंता महंगाई को रोकना है।

महंगाई को संभालने के लिए रिजर्व बैंक जो कर सकता है, वह करेगा। अनुमान यह है कि 2012–13 में थोक मूल्य सूचकांक की बढ़ोत्तरी दर पांच प्रतिशत से ज्यादा रहेगी और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की बढ़ोत्तरी दर दस प्रतिशत से ज्यादा रहने के आसार हैं। यह भयंकर बढ़त वाली महंगाई है। जो इन आंकड़ों को नहीं समझते हैं, वे भी बाजार जाकर इतना तो समझ रहे हैं कि हाल के सालों में महंगाई की रफ्तार और तेवर बहुत भीषण रहे हैं।

रिजर्व बैंक ने अपनी चिंताओं को साफ तौर पर जाहिर भी किया है कि उसके मुताबिक हाल में महंगाई के कुछ कम होने के आसार दिखे हैं, पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक दो अंकों में है। खाद्य आपूर्ति से जुड़ी समस्याओं के चलते महंगाई का जोखिम बना हुआ है। रिजर्व बैंक महंगाई बढ़ाने की आशंका को जन्म देने वाले कोई कदम नहीं उठाना चाहता। रिजर्व बैंक की दवा अपनी जगह है। पर हालात बताते हैं कि दर्द की वजह कुछ और है।

महंगाई बढ़ने की वजह खाद्य–महंगाई है। खाद्य महंगाई पिछले दिनों बहुत तेजी से बढ़ी है। कृषि लागत और मूल्य आयोग के शोधपत्र में दर्ज है कि भारत में औसत परिवार अपने कुल खर्च का करीब आधा खाने की चीजों पर करता है और गरीब तो अपने खर्च का साठ प्रतिशत खाने की चीजों पर करते हैं। यानी महंगाई सिर्फ उद्योग जगत का मसला नहीं है। महंगाई सही अर्थो में इस देश के अवाम का मसला है। रिजर्व बैंक इस पर चिंतित है तो ठीक ही है, पर दर्द कुछ और ही है। खाने–पीने की चीजों की महंगाई जिन वजहों से पैदा हो रही है, उनमें से एक यह है कि भारत के ग्रामीण अंचल में महात्मा गांधी रोजगार गारंटी योजना के चलते आय में बढ़ोत्तरी हुई है। आय में बढ़ोत्तरी हुई है, तो खाने की चीजों की मांग बढ़ेगी।

यह बात निश्चय ही अर्थव्यवस्था के लिए नकारात्मक नहीं कही जा सकती है। पर नकारात्मक यह है कि महात्मा गांधी रोजगार योजना से अर्थव्यवस्था में उत्पादक निर्माण नहीं हो रहा है। पुल, सड़क, स्कूल, अस्पताल, पटरियां इस योजना के तहत बनी होतीं तो समूची अर्थव्यवस्था में उत्पादक निर्माण होता। यह योजना अर्थव्यवस्था में आय तो पैदा कर रही है, लेकिन उत्पादकता पैदा नहीं कर रही है। यह असंतुलन की बात है। इस असंतुलन पर विचार की जरूरत है।

खाने–पीने की चीजों की महंगाई पर गहराई से विचार करें तो हजारों बार कहा चुका है कि टनों गेहूं, टनों फल–सब्जियां ठीक रखरखाव के अभाव में सड़ जाती हैं। सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिए हैं कि गेहूं को सड़ाने से बेहतर है कि मुफ्त में बांट दिया जाए। पर ऐसा भ्रष्ट व्यवस्था में संभव नहीं है। खाने–पीने के सस्ते आइटम गरीबों को मुहैया कराने के लिए मौजूद राशन की दुकानें आजाद भारत की भ्रष्ट व्यवस्था का प्रतीक बनकर रह गई हैं। लोकल छुटभैया नेता टाइप के लोगों ने राशन की दुकानें हथिया रखी हैं। पब्लिक को कभी टाइम से सही डिलीवरी नहीं दी जाती।

सरकारी अध्ययनों के मुताबिक ही राशन की दुकानों का करीब पचास प्रतिशत से ज्यादा खाद्यान्न चोरी–चकारी के बाजार में बिकता है। छत्तीसगढ़ जैसे राज्य अपवाद हैं, जहां राशन की दुकान बहुत ही कुशल तरीके से काम कर रही है।

सरकारी अध्ययनों के मुताबिक ही राशन की दुकानों का करीब पचास प्रतिशत से ज्यादा खाद्यान्न चोरी– चकारी के बाजार में बिकता है। छत्तीसगढ़ जैसे राज्य अपवाद हैं, जहां राशन की दुकान बहुत ही कुशल तरीके से काम कर रही है। छत्तीसगढ़ के राशन मॉडल को पूरे देश की खाद्य महंगाई के मुकाबले कैसे खड़ा किया जाए, यह महत्वपूर्ण सवाल है। पर अंततः यह सवाल राजनीतिक सवाल बन जाता है, जो राज्यों के विकास मॉडल की बहस में उलझ जाता है। बैंक खातों में सीधे कैश सब्सिडी का हस्तांतरण संभव होने के बाद शायद भ्रष्टाचार पर कुछ लगाम लगे। पर यह भविष्य की उम्मीद है।

अभी की सच्चाई तो यह है कि खाद्य महंगाई थमती दिखाई नहीं पड़ रही है, वित्तमंत्री, प्रधानमंत्री के आश्वासनों के बावजूद। एक हद के बाद ये मसला भी राजनीति में उलझकर रह जाता है कि केंद्र के नेता आरोप लगाते हैं कि जमाखोरी रोकना राज्य सरकारों का काम है। केंद्र सरकार के दल से भिन्न दलों वाली राज्य सरकारें कहती हैं कि केंद्र की नीतियों की वजह से महंगाई बढ़ रही है। महंगाई पर हो–हल्ला विकट से विकटतर होता जाता है। पर उससे निपटने के विकल्पों पर सार्थक बहस न्यून से न्यूनतर होती जाती है। ऐसे में रिजर्व बैंक की यह सलाह एकदम ठीक है कि राजकोषीय घाटा कम हो, सरकारी खर्च ठीक जगह लगे। अनुत्पादक खर्च महंगाई को बढ़ावा देते हैं।

सलाह ठीक है, पर सरकार द्वारा इस पर अमल करना और वह भी चुनावी साल में बहुत मुश्किल काम है। इसलिए रिजर्व बैंक की सलाह सिर्फ सलाह ही रहने वाली है। सो, रिजर्व बैंक ने साफ कर दिया है कि महंगाई को घटाना सिर्फ उसके बूते की बात नहीं है। पर जब तक महंगाई और नीचे नहीं होगी, ब्याज दरों में कमी की उम्मीद रिजर्व बैंक से न की जाए। रिजर्व बैंक अपनी जगह बिलकुल ठीक है। पर केंद्र सरकार और राज्य सरकारों का क्या किया जाए, जिन्हें ठीक और गलत के हिसाब से नहीं, चुनावी साल में चुनावी अंकगणित से काम करना होता है। ❑

समीक्षा

सोने व चांदी में मंदी अस्थाई
रोटी के मूल्यों में तेजी स्थाई

बचत का प्रमुख भाग सोने में लॉकरों व अल्मारियों में बंद पडा हुआ है जिससे अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आ पा रहा है। हो सकता है कि निवेशक बैंकों की अन्य जमा योजनाओं की तरफ जा पायें। भारतीयों ने इस मंदी से यह सबक जरूर लिया होगा कि सोने में निवेश कर और फिर सोने को तिजोरी में बंद करने से देश की अर्थव्यवस्था में कोई सुधार नहीं होता है। बैंकों में जमा राशि बढ़े तभी अर्थव्यवस्था में सुधार संभव है तभी महंगाई पर लगाम लग सकेगी जिससे आम आदमी को रोटी थोड़ी सस्ती मिल सकेगी।

■ डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल

सोने व चांदी धातु के मूल्यों में मंदी आयी और इन बहुमूल्य धातुओं के मूल्य लुढ़क गये जोकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आये परिवर्तनों का नतीजा थे तथा यह मंदी मात्र कुछ दिनों की है। इन धातुओं से आम आदमी का पेट नहीं भरता है परन्तु जिस रोटी से पेट भरता है उसके मूल्यों में गत दशक वर्षों से निरन्तर तेजी आती जा रही है और मंहगाई बढ़ कर दहाई का आंकडा पार कर गई है जिससे आम आदमी को पेट भरना भारी पड़ रहा है। परन्तु इससे बाजार में कोई हलचल व चिन्ता नहीं दिखाई दे रही है जबकि सोने व चांदी के मूल्यों में आयी मंदी ने बाजार में तूफान खड़ा कर दिया है।

इस गिरावट को आम आदमी में निम्न मध्यम आय वर्ग के लोग हैरत भरी नजरों से देख रहे है जो निकट भविष्य में ही अपनी पुत्रियों को दहेज में सोने व चांदी के आभूषण तो भेंट करना चाह रहे है परन्तु इस मंदी का लाभ उठाने के लिए उनके पास दाम नहीं है। इस सबसे जोर का झटका उन सटोरी इंटरनेट कारोबारियों को लगा है जो कि प्रतिदिन करोड़ों रुपयों का लाभ लेकर करोड़पति बनते ही जा रहे थे।

गत दशक में सोने की कीमतों में छः गुने से ज्यादा बढोतरी हुई तथा रिकार्ड स्वर्ण का आयात किया गया है। 2012–13 के पहले दस महीनों में यह आयात 42 अरब डालर तक पहुंच गया जिसका परिणाम यह हुआ कि चालू खाता घाटा खतरे के निशान को पार करने लगा तथा जो लोग सम्पत्ति के रुप में सोना संग्रहित कर रहे थे उनको नुकसान तो हुआ ही उधर देश के वित मंत्री भी हाथ मलने के अलावा कुछ नहीं कर पा रहे। लॉकर व अलमारी में रखे सोने व चांदी का मूल्य कम हो रहा है तथा यह सुरक्षित निवेश असुरक्षित होकर उनकी जमाओं को निरन्तर कम करता जा रहा है तथा यह धारणा कि सोना सर्वोत्तम निवेश है टूटती जा रही है।

परन्तु हमें लगता है कि यह अस्थाई प्रवृति है और सोना फिर चढ़ेगा। सोने में हमेशा से ही पागलपन की हद तक उतार–चढ़ाव आते रहे है। 2011 में जो सोना 33,000 रुपये प्रति दस ग्राम था व अप्रैल 2013 के तीसरे सप्ताह में लगभग 26,000 रुपये प्रति दस ग्राम पंहुच गया। क्या सोने की गिरती व स्थिर कीमतों की स्थिति में पहुंचने की स्थिति आ गई है।

आगामी दशक में गृहणियों को सोने से कोई अधिक लाभ मिलने के आसार नहीं है। ऐसा कुछ विशेषज्ञ बता रहे है। सटोरियों ने 2010 और 2011 में 26 अरब डॉलर गोल्ड लिंक्ड सिक्युरिटीज में लगाए थे, ऐसा कुछ खास कारणों से हुआ था। आयात शुल्क बढ़ा दिया गया था तथा माना गया था कि यह समय सोने को खरीदने का है बेचने का नहीं। इससे घरेलू बाजार में सोने की कीमतें बढ़ी और सटोरियों ने करोडों अरबों रुपयों का लाभ कमाया।

भारत के अधिसंख्य बैंक, डाकघर इत्यादि सोने के सिक्कों को क्रय करने में

सोने व चांदी धातु के मूल्यों में मंदी आयी और इन बहुमूल्य धातुओं के मूल्य लुढक गये जोकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आये परिवर्तनों का नतीजा थे तथा यह मंदी मात्र कुछ दिनों की है। इन धातुओं से आम आदमी का पेट नहीं भरता है परन्तु जिस रोटी से पेट भरता है उसके मूल्यों में गत दशक वर्षों से निरन्तर तेजी आती जा रही है और मंहगाई बढ़ कर दहाई का आंकडा पार कर गई है जिससे आम आदमी को पेट भरना भारी पड रहा है।

होने वाले खतरों से आगाह नहीं कर रहे थे। देश के वित्त मंत्री ने कभी देश के स्वर्ण उपभोक्ताओं को नही चेताया। आम आदमी स्वर्ण खरीद कर फंस गया और अपनी मेहनत से बचायी रकम को लूटा दिया। जबकि सटोरियों ने सट्टों में कमाई हुई कमाई को ही खोया। स्वर्ण आयात की प्रवृत्ति तभी घटेगी जब आयात शुल्क में कमी आएगी और भुगतान संतलुन में जबरदस्त सुधार देखने को मिलेगा। भारत में सोने का बहुत बड़ा बाजार है। मंदी से बिकवाली बढ़ी तो है परन्तु बाजार में अफरातफरी भी बढ़ रही है।

भारत में पीली धातु को खरीदने के लिए दहेज, कभी अक्षय तृतीया और कभी दीपावली का बहाना बनाया जाता है। सोने के प्रति भारतवासियों का जबर्दस्त आकर्षण है। भारत के सिर पर विश्व का सबसे बड़े आयातक का तगमा लगा हुआ है। लोग निवेश के साथ साथ आभूषणों के अपने शौक को पूरा करने में पीछे नहीं होंगे तो यह मंदी अस्थाई ही साबित होगी।

विशेषज्ञों के अनुसार सोने व चांदी की कीमतों में गिरावट 8–10 साल की दुर्लभ घटना है। मात्र पांच महीनों में ही सोने की 25 प्रतिशत कीमतें कम हो गई। विशेषज्ञ मानते है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था सुधर रही है जिससे अमेरिकी लोग शेयर बाजार में रकम निवेश कर रहे है और सोने में लगे निवेश को निकाला जा रहा है। तभी गत दिनों में अमेरिकी शेयर बाजार

में 14 प्रतिशत का उछाल आया और सोना 13 प्रतिशत गिर गया। सोने की ऊंची कीमतों ने आभूषणों की मांग कम कर दी जिससे सोने की घरेलू मांग कम हो गई उधर सरकार ने सोने की कस्टम डयूटी को 4 प्रतिशत से बढा कर 6 प्रतिशत कर दिया जिससे सोने के आयात पर प्रभाव पडा।

सोने का आयात 2013 की प्रथम तिमाही में 24 प्रतिशत की दर से घट गया जो सुनहरे भविष्य की कल्पना को साकार करता है। जब डॉलर गिरता है तो सोने के भाव बढ़ते है। परन्तु इस बार डॉलर व सोने दोनों में ही गिरावट देखी गई। यह चकित करने वाली प्रवृत्ति है। अमेरिका, जापान व यूरोपीय देशों के द्वारा नरम मौद्रिक नीति अपनायी गई थी परन्तु कीमत फिर भी गिर रही है।

सोने व चांदी के भावों में गिरावट से भारतीय अर्थव्यवस्था व कॉरपोरेट जगत पर कोई ज्यादा नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ने वाला है क्योंकि साल के अंत तक कीमतों में सुधार हो सकता है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को वरदान मिल सकता है। इससे देश में ब्याज दरों के घटने का माहौल बन सकेगा। घरेलू बचत दरों में वृद्धि हो सकती है। कम्पनियों के लिए कच्चे माल की लागत कम हो सकती हैं। हो सकता है कि आम आदमी को महंगाई से थोडी बहुत राहत मिल जाये।

परन्तु 2013 के समाप्त होते होते कीमतों में सुधार के संकेत भी है। सोने में निवेश दीर्घकाल के लिए किया जाता है। परन्तु सारा धन मात्र सोने में निवेश कर देना अक्लमंदी नहीं होगी। सोने में एक सीमा तक ही निवेश करना उचित होगा। अधिक लाभ कमाने की बजाय स्थिरता, सुरक्षा व विविधता को बनाए रखने के लिए ही सोने में निवेश करना हितकर होना चाहिए। वर्ल्ड गोल्ड कांउसिल के अनुसार वैश्विक स्तर पर 2011 में सोने की मांग 4582 टन थी तो 2012 में 4405 टन अर्थात 4 प्रतिशत की गिरावट थी। घरेलू स्तर पर 2011 में 986 टन व 2012 में 864 टन अर्थात 12 प्रतिशत की गिरावट देखी गई। घरेलू स्तर पर निवेश में 15 प्रतिशत तथा आभूषणों की मांग में गिरावट 11 प्रतिशत की थी।

गत चार पांच वर्षों से देश के बैंक सोने के आभूषणों को गिरवीं रख कर ऋण

दे रहे थे और ऋण देने के लिए उनमें प्रतियोगिता हो गई थी परन्तु जब बैंकों ने पांच महीनों में ही सोने के मूल्यों में 25 प्रतिशत की भारी गिरावट देखी तो वे अपने यहां गिरवीं रखे हुए सोने के मूल्यों का आंकलन करने में जुट गये है जिससे उनके ऋणों की समस्या और बढ़ गई है।

रिजर्व बैंक के अनुसार 2009 में कुल ऋणों में सोने के आधार पर दिये गये ऋणों का प्रतिशत मात्र एक था जो 2012 में बढ कर 2.4 प्रतिशत हो गया तथा 2016 तक कुल ऋण में यह प्रतिशत सात होने की आशा है। इन चार वर्षों में बैंकों की तरफ से वितरित होने वाले ऋणों में औसत रुप से 16–17 प्रतिशत वृद्धि की आशा व्यक्त की जा रही है। जबकि गोल्ड लोन देने की रफ्तार में औसत रुप से 70–80 प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है।

गत दो वर्षो 2012, 2011 में सोने की कीमतें 30–32 हजार रुपया प्रति दस ग्राम रही और बैंक सोने की कीमत का 70–80 प्रतिशत तक ऋण आसानी से दे देते है। अब सोने के दाम 26,750 रुपया प्रति दस ग्राम हो गई जिससे गिरवीं रखें सोने का मूल्य कम हो गया और बैंक के गोल्ड लोन पोर्टफोलियो का बहुत बडा हिस्सा अनिवार्य रुप से प्रभावित होगा।

भारतीय स्टेट बैंक ने सबसे अधिक ऋण लगभग 35,000 करोड़ रुपये सोने को गिरवीं रख कर दिया है। परन्तु स्टेट बैंक बहुत बड़ा बैंक है जिस पर इतनी सी रकम का कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ने वाला है। जबकि उसकी देखादेखी छोटे बैंक जैसे विजय बैंक, कॉरपोरेशन बैंक इत्यादि को अपनी स्थिति बचाने के लिए अतिरिक्त उपाय करने पडेगें।

सोने की कीमतें व भारतीय अर्थव्यवस्था

सोने व चांदी के भावों में गिरावट से भारतीय अर्थव्यवस्था व कॉरपोरेट जगत पर कोई ज्यादा नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ने वाला है क्योंकि साल के अंत तक कीमतों में सुधार हो सकता है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को वरदान मिल सकता है। इससे देश में ब्याज दरों के घटने का माहौल बन सकेगा। घरेलू बचत दरों में वृद्धि हो सकती है। कम्पनियों के लिए कच्चे माल की लागत कम हो सकती हैं। हो सकता है कि आम आदमी को महंगाई से थोडी बहुत राहत मिल जाये। सोना और कच्चे तेल (क्रूड आयल), अल्युमिनियम, जिंक, कॉपर सहित कई पदार्थों की कीमतें घट सकती है जिससे भारत में मैन्युफैक्चरिंग उत्पादों की लागत कम जरुर होगी जिसका धनात्मक प्रभाव ऑटो, कैपिटल गुड्स क्षेत्र की कम्पनियों के लिए कच्चे माल की लागत कम होगी।

भारत में थोक मूल्य सूचकांक में मैन्यूफैक्चरिंग की हिस्सेदारी 35 प्रतिशत है। इससे महंगाई में कमी आ सकती है। ब्याज दरों में कमी होने की आशा है। सोने व चांदी की कीमतों में मंदी से भारत की अर्थव्यवस्था को महंगाई से राहत मिल सकती है। सरकार का आयात बिल कम होगा जिससे रिजर्व बैंक के लिए ब्याज दरों को घटाना मुमकिन हो सकता है। शेयर बाजार में सुधार होने की भी आशा है तथा कम्पनियां नये–नये निवेश करने को प्रोत्साहित हो सकती है जिससे रोजगार के अवसर बढ़ सकेंगे।

धातु वाले कच्चे माल की कीमतों में पांच प्रतिशत का अंतर आने पर कम्पनियों में अपने अपने उत्पादों की कीमतों में बदलाव की प्रवृत्ति देखी गई है। कई जिंसों में दस प्रतिशत तक की गिरावट आ चुकी है और आगामी कुछ महीनों में भी अगर यह गिरावट जारी रहती है तो इस गिरावट का लाभ कम्पनियां अनिवार्य रुप से अपने अपने ग्राहकों को दे सकती हैं जिससे घरेलू बचत में सुधार हो सकता है। यह भी हो सकता है कि निवेशक सोने के अलावा अन्य विकल्पों पर भी ध्यान देने लगे। भारत में सोने को खरीद कर लॉकर व अल्मारी में बंद रखने की प्रवृत्ति है जिस कारण उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है। रिजर्व बैंक के अनुसार 2009–10 में घरेलू बचत 47 प्रतिशत थी जो 2011–12 में 36 प्रतिशत हो गई। बचत का प्रमुख भाग सोने में लॉकरों व अल्मारियों में बंद पडा हुआ है जिससे अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आ पा रहा है। हो सकता है कि निवेशक बैंकों की अन्य जमा योजनाओं की तरफ जा पायें।

भारतीयों ने इस मंदी से यह सबक जरूर लिया होगा कि सोने में निवेश कर और फिर सोने को तिजोरी में बंद करने से देश की अर्थव्यवस्था में कोई सुधार नहीं होता है। बैंकों में जमा राशि बढ़े तभी अर्थव्यवस्था में सुधार संभव है तभी महंगाई पर लगाम लग सकेगी जिससे आम आदमी को रोटी थोड़ी सस्ती मिल सकेगी। ❑

रिजर्व बैंक के अनुसार 2009–10 में घरेलू बचत 47 प्रतिशत थी जो 2011–12 में 36 प्रतिशत हो गई। बचत का प्रमुख भाग सोने में लॉकरों व अल्मारियों में बंद पडा हुआ है जिससे अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आ पा रहा है। हो सकता है कि निवेशक बैंकों की अन्य जमा योजनाओं की तरफ जा पायें।

सरकारी खर्च की गुणवत्ता सुधारिये

अर्थशास्त्र में कौटिल्य लिखते हैं कि सरकारी कर्मियों के रिसाव का पता लगाना उतना ही कठिन है जितना पता लगाना कि मछली ने कितना पानी पिया है। वर्तमान में भ्रष्ट अधिकारी के विरूद्ध पुलिस द्वारा तब कदम उठाया जाता है जब कोई शिकायत करे। अधिकतर भ्रष्टाचार मिली भगत से होता है इसलिये शिकायत नहीं होती है। इस खुफिया तंत्र का कार्य होगा कि स्वयं पहल करके भ्रष्ट सरकारी कर्मियों को ट्रैप करे।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

देश की आर्थिक विकास दर दबाव में है। चन्द वर्षों पूर्व हम 9 प्रतिशत की विकास दर को छू रहे थे। आज 6 प्रतिशत भी हासिल कर पाने में संदेह है। मूल समस्या बढ़ते वित्तीय घाटे की है। सरकार की आय कम और खर्च ज्यादा है। इस घाटे की पूर्ति के लिये सरकार ऋण ले रही है और ऋण के बोझ से दबती जा रही है। ऋण लेना बुरा नहीं है। टाटा जैसे सफल समूह भी ऋण लेकर उद्योग लगाते हैं। परन्तु ऋण लेकर पांच सितारा होटल में ऐयाशी करना हानिप्रद हो जाता है। यही बात सरकारी ऋण पर भी लागू होती है। ऋण लेकर सरकार द्वारा हाईवे अथवा स्पेस स्टेशन बनाये जाएं तो ऋण लेने का प्रभाव सकारात्मक होगा। ऋण लेकर सरकारी राजस्व का रिसाव करा दिया जाये तो उसी ऋण का प्रभाव नकारात्मक हो जाता है। अतः विकास दर को पुनः पटरी पर लाने के लिये सरकारी खर्चों की गुणवत्ता को सुधारना जरूरी था। इस दिशा में कई कदम उठाये जा सकते थे जिनपर वित्त मंत्री ध्यान नहीं दे रहे हैं।

सरकारी खर्च की न्यून गुणवत्ता का मुख्य कारण रिसाव है। गुब्बारे में से कुछ हवा निकाल देने से वह दब जाता है अथवा गाड़ी के एक टायर में से कुछ हवा निकाल दी जाये तो गाड़ी चलना बन्द हो जाती है अथवा प्रेशर कुकर में छोटा सा छेद हो तो दाल नहीं पकती है। इसी तरह सरकारी बजट में से रिसाव की रकम विदेश भेजने से अथवा इससे सोना खरीद कर रख देने से अर्थव्यवस्था फुस्स हो जाती है। अतः ऐसे कदम उठाने चाहिये थे कि रिसाव बन्द हो। सरकारी तंत्र में रिसाव दो स्तरों पर होता है। एक स्तर मंत्रियों का है। इस पर नियंत्रण चुनावों के माध्यम से होता है जैसे राजीव गांधी ने बोफोर्स प्रकरण के कारण अथवा कर्नाटक में येदुरप्पा ने सत्ता गंवाई थी। दूसरा स्तर सरकारी कर्मियों का है। इनके भ्रष्टाचार पर चुनाव से नियंत्रण नहीं हो पाता है। ईमानदार व्यक्ति सत्ता पर काविज़ हो भी जाये तो भी इस विशाल तंत्र से चौतरफा फैला भ्रष्टाचार को रोकना उसके लिये कठिन होता है। इनके भ्रष्टाचार को रोने के उपाय करने चाहिये।

इस दिशा में पहला कदम यह उठाया जा सकता था कि सरकारी विभागों की आडिट के लिये स्वतंत्र आडिटर नियुक्त किये जायें और इनकी टीम में स्वतंत्र नागरिकों को शामिल किया जाये। वर्तमान समय में श्री विनोद राय के नेतृत्व में सरकारी ऑडिट ने प्रभावी कदम उठाये हैं। परन्तु यह अपवाद है। कैग के अधिकतर प्रमुख सुस्त रहे हैं। सरकार द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्ति द्वारा अपने आका के विरुद्ध ही सख्त कदम उठाना सामान्य व्यक्तियों के बस में नहीं होता है। अतः स्वतंत्र ऑडिटर नियुक्त किये जाने चाहिये। यह कार्य लोकपाल को दिया जा सकता है।

दूसरा कदम यह कि सरकारी भ्रष्टाचार का पता लगाने के लिये एक अलग पुलिस तंत्र खड़ा किया जाये। अर्थशास्त्र में

कौटिल्य लिखते हैं कि सरकारी कर्मियों के रिसाव का पता लगाना उतना ही कठिन है जितना पता लगाना कि मछली ने कितना पानी पिया है। वर्तमान में भ्रष्ट अधिकारी के विरूद्ध पुलिस द्वारा तब कदम उठाया जाता है जब कोई शिकायत करे। अधिकतर भ्रष्टाचार मिली भगत से होता है इसलिये शिकायत नहीं होती है। इस खुफिया तंत्र का कार्य होगा कि स्वयं पहल करके भ्रष्ट सरकारी कर्मियों को ट्रैप करे।

तीसरा कदम यह कि हर अफसर के विभाग से सम्बन्धित उपभोक्ताओं का गोपनीय सर्वे कराया जाये। जैसे बिजली के सब स्टेशन से जुड़े उपभोक्ताओं से जूनियर इंजीनियर की कार्यकुशलता का सर्वेक्षण कराया जाये। उपभोक्ताओं की सूची में से 100 को कम्प्यूटर द्वारा चयनित कराया जाये और और उनहें वापसी लिफाफे सहित गोपनीय पत्र भेजकर अधिकारी की कार्यकुशलता के बारे में अपनी राय बताने को कहा जाये।

मात्र हजार रुपये के खर्च से भ्रष्ट अधिकारियों का पर्दाफाश हो जायेगा। इस सर्वे के आधार पर इनकी पदोन्नति हो अथवा इन्हें मुअत्तल कर दिया जाए। किसी समय मुझे डोनर की तरफ से एक पांच सितारा एनजीओ का मूल्यांकन करने का अवसर मिला। मैने एनजीओ के 500 सदस्यों को गोपनीय पत्र लिखा। उनके उत्तरों से स्पष्ट हुआ कि एनजीओ को व्यक्तिगत जागीर की तरह चलाया जा रहा था। इन कदमों से सरकारी खर्चों की गुणवत्ता में सुधार आयेगा और अर्थव्यवस्था चल निकलेगी।

सरकारी खर्चों की गुणवत्ता सुधारने का दूसरा उपाय नीतियों में परिवर्तन है। सरकार को वोट चाहिये। इसके लिये आम आदमी को राहत पहुंचाना जरूरी है। यह स्वागत योग्य भी है। परन्तु लाभार्थी से मनरेगा में फर्जी कार्य कराकर राहत देना जरूरी नहीं है। उत्तम होता कि देश के उद्यमियों को श्रम सब्सिडी देकर उनके मार्फत काम कराया जाता। जैसे छोटे उद्योगों द्वारा कार्य पर रखे गये श्रमिकों का प्राविडेंड फंड सरकार द्वारा भरा जा सकता है। अथवा जिन उद्योगों के द्वारा अधिक श्रमिकों को रोजगार दिया जा रहा है उन्हें एक्साइज ड्यूटी में छूट दी जा सकती है।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य लिखते हैं कि सरकारी कर्मियों के रिसाव का पता लगाना उतना ही कठिन है जितना पता लगाना कि मछली ने कितना पानी पिया है। वर्तमान में भ्रष्ट अधिकारी के विरूद्ध पुलिस द्वारा तब कदम उठाया जाता है जब कोई शिकायत करे। अधिकतर भ्रष्टाचार मिली भगत से होता है इसलिये शिकायत नहीं होती है। इस खुफिया तंत्र का कार्य होगा कि स्वयं पहल करके भ्रष्ट सरकारी कर्मियों को ट्रैप करे।

मान लीजिये दो कार निर्माता हैं। एक रोबट का उपयोग करता है। दूसरा वही काम श्रमिक से कराता है। ऐसे में रोबट वाली फैक्ट्री पर टैक्स बढ़ाकर श्रमिक वाली फैक्ट्री को टैक्स में छूट देनी चाहिये। अथवा पूंजी सघन उद्योगों जैसे पेट्रोलियम पर टैक्स बढ़ाकर श्रम सघन उद्योगों जैसे चमड़ा उद्योग पर टैक्स घटाया जा सकता है। ऐसा करने से अर्थव्यवस्था पर औसत टैक्स की दर पूर्ववत् रहेगी और उद्यमियों पर अतिरिक्त बोझ नहीं पड़ेगा।

सहज ही देश में श्रम सघन उद्योगों में वृद्धि होगी और पूंजी सघन उद्योग कम होंगे। हमारे देश में श्रम अधिक और पूंजी कम है। हमें एल्यूम्यूनियम जैसे पूंजी सघन माल का आयात करना चाहिये और कपड़े तथा चमड़े जैसे श्रम सघन माल का निर्यात करना चाहिये। अथवा रोजगार हनन करने वाली मशीनों जैसे एस्कावेटर और हार्वेस्टर पर टैक्स लगाया जा सकता है। इन नीतियों से उद्यमी के लिये अधिक संख्या में श्रमिकों को काम देना लाभप्रद हो जायेगा।

तदानुसार सरकार को मनरेगा तथा दूसरे कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च कम करने होंगे और वित्तीय घाटा नियंत्रण में आयेगा। उद्योगों को श्रम सब्सिडी मिलने से उनकी लागत कम होगी और उद्यमियों का निवेश करने का साहस बढ़ेगा। इन नीतियों का निश्चित रूप से चुनावी लाभ भी वित्त मंत्री को मिलता। गृहणी की आय कम हो और घर में बच्चा बीमार हो तो वह बच्चे की डाइट बदल कर उसे स्वास्थ लाभ करा देती है। एक्स्ट्रा खर्च भी नहीं पड़ता है और वह स्कूल जाने लगता है। इसी तरह वित्त मंत्री को चाहिये था कि ऐसे कदम उठाते कि बिना टैक्स बढ़ाये एवं बिना खर्च घटाये ही अर्थव्यवस्था चल पड़ती।

इस समय विश्व व्यवस्था में मंदी का दौर चल रहा है। मेरे आकलन में यह दौर लंबा चलेगा। सरकार के लिये अपने खर्चों में कटौती करना कठिन है चूंकि कटौती से कोई न कोई लाबी अवश्य प्रभावित होगी। ऐसे में सरकारी खर्चों की गुणवत्ता में सुधार करके वित्तीय घाटे की भूमिका को ही सकारात्मक बनाने का प्रयास करना चाहिये। ❑

मुद्दा

ग्रामीण विकास की छद्म तस्वीर

यक्षप्रश्न यही है कि कब तक खेती की जमीन बेच कर बोलेरो खरीदी जाएगी? कब तक गांवों से रोजगार के लिए पलायन होता रहेगा? उसके बाद गांव में न रोजगार होगा और न पैसा। यह बुलबुला ज्योंही फूटेगा, मानव संसाधन, तकनीक, भौतिक चमक को संभालना नामुमकिन हो जाएगा। समय है कि आंकड़ों से निकल कर दस साल की योजना बना गांवों के विकास का ढांचा तैयार किया जाए।

■ **पंकज चतुर्वेदी**

सरकार की नजर में हिंदुस्तान के गांवों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियां, बैंक, बिल्डर, सभी गांवों की ओर दौड़ रहे हैं। लेकिन उजले भारत के इन दमकते पोस्टरों के पीछे की त्रासदी और दर्द जानबूझ कर छुपाया जा रहा है। गांवों का तेजी से होता शहरीकरण, जोत के लिए घटती जमीन, खेती का अनवरत घाटे का सौदा होना, कर्ज में दबे किसान का खेती छोड़ शहरों में अनियोजित सेक्टर में मजदूरी करना और ग्रामीण–क्षेत्र में बढ़ रही खरीद क्षमता का छद्म मुलम्मा ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है।

सरकारी मानक के मुताबिक जिस स्थान की आबादी पांच हजार से कम हो, जहां जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम हो, जहां कामकाजी पुरुषों का 25 फीसद खेती–किसानी में लगा हो– वह ग्रामीण क्षेत्र कहलाएगा। रेटिंग एजेंसी क्रिसिल के संदर्भ से वित्त मंत्री पिछले दिनों संसद में बता चुके हैं कि 2009–10 और 2011–12 के बीच ग्रामीण भारत ने 3.75 लाख करोड़ रुपये अतिरिक्त खर्च किए, जो इस अवधि में शहरी भारत के 2.99 लाख करोड़ रुपये से कहीं ज्यादा थे।

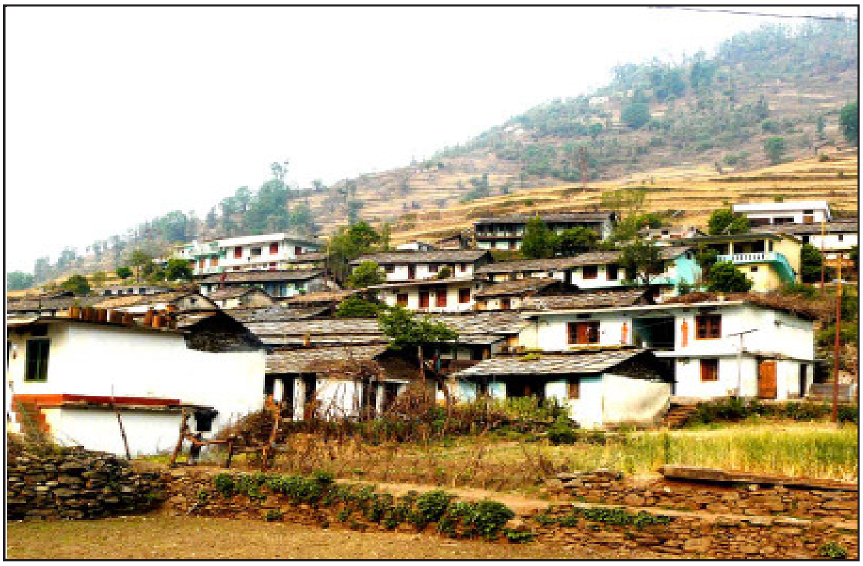

सरकार की नजर में हिंदुस्तान के गांवों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियां, बैंक, बिल्डर, सभी गांवों की ओर दौड़ रहे हैं। लेकिन उजले भारत के इन दमकते पोस्टरों के पीछे की त्रासदी और दर्द जानबूझ कर छुपाया जा रहा है। गांवों का तेजी से होता शहरीकरण, जोत के लिए घटती जमीन, खेती का अनवरत घाटे का सौदा होना, कर्ज में दबे किसान का खेती छोड़ शहरों में अनियोजित सेक्टर में मजदूरी करना और ग्रामीण–क्षेत्र में बढ़ रही खरीद क्षमता का छद्म मुलम्मा ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है।

सारी दुनिया मंदी की मार से बेहाल थी लेकिन भारत का आंचलिक क्षेत्र इससे अछूता था। इसका काफी श्रेय मनरेगा जैसी योजनाओं को दिया गया, जिनके कारण ग्रामीण इलाकों तक पैसे का बहाव और उपभोक्ता वस्तुओं का बाजार बना रहा। पर हकीकत इससे परे है। इसकी एक झलक के लिए उप्र, मध्यप्रदेश जैसे राज्यों के पंचायत चुनाव याद करने जरूरी हैं, जहां एक–एक उम्मीदवार ने सरपंच बनने के लिए चालीस–पचास लाख तक फूंक दिए। परिणामतः गोबर–पट्टी के इन गांवों में कुछ सालों में इतने एसयूवी, मोटर साइकिलें खरीदीं गई कि शहर बहुत पीछे रह गए।

कहीं भी जिला स्तर पर देखें तो वहां के स्थानीय अखबार मनरेगा, मिड डे मील,

सार्वजनिक भरे होते हैं। यानी ग्रामीण इलाकों की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के दावों के पीछे सरकारी बजट के घपलों का बड़ा योगदान है। गांवों की दमकती तस्वीर पेश करने के पीछे ग्रामीण भारत के हर दो में से एक घर में मोबाइल होने, 50 फीसद घरों तक टेलीविजन पहुंचने, 20 फीसद घरों में दोपहिया वाहन जैसे आंकड़ों का सहारा लिया जाता है। लेकिन चालाकी से यह सच छिपा दिया जाता है कि आज भी मुल्क के गांवों में 11.29 करोड़ लोग खुले में शौच जाते हैं।

बाल मृत्यु दर चालीस फीसद है और कुपोषित लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। नेशनल सैंपल सर्वे के आंकड़े बताते हैं कि आंध्रप्रदेश के 82 फीसद किसान कर्ज से दबे हैं। पंजाब और महाराष्ट्र जैसे कृषिप्रधान राज्यों में यह आंकड़ा औसतन 65 प्रतिशत है। संसद में एक सवाल के जवाब में कृषि मंत्री कहते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर प्रति किसान औसतन 1.16 हेक्टेयर जमीन है। इतनी जमीन पर गेहूं बोने पर एक फसल पर किसान को 2527 रुपये मिलते हैं जबकि धान पर 2223 रुपये। यह तथ्य इंगित करता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ी क्रय क्षमता के पीछे और कारण हैं। जमीन बेचने से एकमुश्त आए पैसे के बदौलत गांवों में बाजार तो दिखता है लेकिन रोजगार या जीवकोपार्जन के स्थाई जरिये खत्म हो जाते हैं।

ग्रामीण इलाकों की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के दावों के पीछे सरकारी बजट के घपलों का बड़ा योगदान है। गांवों की दमकती तस्वीर पेश करने के पीछे ग्रामीण भारत के हर दो में से एक घर में मोबाइल होने, 50 फीसद घरों तक टेलीविजन पहुंचने, 20 फीसद घरों में दोपहिया वाहन जैसे आंकड़ों का सहारा लिया जाता है। लेकिन चालाकी से यह सच छिपा दिया जाता है कि आज भी मुल्क के गांवों में 11.29 करोड़ लोग खुले में शौच जाते हैं।

सरकारी आंकड़ों के चश्मे से उप्र को देखें तो यहां 24202000 हेक्टेयर भूमि में से शुद्ध का 69.5 फीसद है। राज्य में कोई ढ़ाई फीसद जमीन खेती के अयोग्य भी है। प्रदेश के 53 प्रतिशत लोग किसान हैं और कोई 20 प्रतिशत खेतिहर मजदूर। यानी करीब तीन–चौथाई आबादी इसी जमीन से अन्न जुटाती है। लेकिन 1970– 1990 के दो दशकों के दौरान राज्य में नेट बोया क्षेत्रफल 173 लाख हेक्टेयर स्थिर रहने के पश्चात अब कम हो रहा है। प्रदेश में सालाना करीब 48 हजार हेक्टेयर खेतीयोग्य जमीन कंक्रीट द्वारा निगली जा रही है।

उत्तरप्रदेश की सालाना आय का 31. 8 प्रतिशत खेती से आता है। यह प्रतिशत 1971 में 57, 1981 में 50 और 1991 में 41 हुआ करता था। साफ है कि लोग खेती से दूर हो रहे हैं। एक और चौंकाने वाला आंकड़ा है कि राज्य में एक हेक्टेयर से कम जोत वाले किसानों का प्रतिशत 75.4 है, जबकि यह आंकड़ा पूरे देश के स्तर पर 61.6 ही है। यही नहीं प्रति व्यक्ति शुद्ध बोया क्षेत्र का आंकड़ा राज्य में राष्ट्रीय आंकड़े से बेहद दूर है।

दिल्ली से सटे गाजियाबाद, बागपत, गौतमबुद्धनगर आदि जिलों में बीते तीन दशकों से खेत उजड़ने का जो सिलसिला शुरू हुआ, उससे खेत मालिकों को तो कार, मकान और मौज–मस्ती के लिए पैसा मिल गया लेकिन खेतों में काम करने वाले बेरोजगार हो गए। उनके लिए करीबी महानगर दिल्ली में आ कर रिक्शा चलाने या छोटी–मोटी नौकरी के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा। जिनके पास बंदूकों के लाइसेंस थे वो गार्ड की नौकरी कर रहे हैं।

दिल्ली से सटे गाजियाबाद, बागपत, गौतमबुद्धनगर आदि जिलों में बीते तीन दशकों से खेत उजड़ने का जो सिलसिला शुरू हुआ, उससे खेत मालिकों को तो कार, मकान और मौज–मस्ती के लिए पैसा मिल गया लेकिन खेतों में काम करने वाले बेरोजगार हो गए। उनके लिए करीबी महानगर दिल्ली में आ कर रिक्शा चलाने या छोटी–मोटी नौकरी के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा।

अधिगृहित भूमि पर लगने वाले कारखानों में स्थानीय लोगों के लिए मजदूर या फिर चौकीदार से ज्यादा रोजगार के अवसर नहीं। इन कारखानों में बाहर से मोटे वेतन पर आए लोग स्थानीय बाजार को महंगा कर रहे हैं जो स्थानीय लोगों के लिए नए तरीके की दिक्कतें पैदा कर रहा है।

यक्षप्रश्न यही है कि कब तक खेती की जमीन बेच कर बोलेरो खरीदी जाएगी? कब तक गांवों से रोजगार के लिए पलायन होता रहेगा? उसके बाद गांव में न रोजगार होगा और न पैसा। यह बुलबुला ज्योंही फूटेगा, मानव संसाधन, तकनीक, भौतिक चमक को संभालना नामुमकिन हो जाएगा। समय है कि आंकड़ों से निकल कर दस साल की योजना बना गांवों के विकास का ढांचा तैयार किया जाए। ❑

तालाब

बुरा समय आ गया है. . .

पानी का प्रबंध, उसकी चिंता हमारे समाज के कर्तव्य–बोध के विशाल सागर की एक बूंद थी। सागर और बूंद एक दूसरे से जुड़े थे। बूंदे अंग्रेजों को समाज के कर्तव्य–बोध का न तो विशाल सागर दिख पाया, न उसकी बूदें। उन्होंने अपने यहां के अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर यहां के राज में दस्तावेज जरूर खोजने की कोशिश की, लेकिन वैसे रिकार्ड राज में रखे नहीं जाते थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यहां सारी व्यवस्था उन्हीं को करनी है। यहां तो कुछ है ही नहीं!

■ **अनुपम मिश्र**

अंग्रेज सात समुंदर पार से आए थे और अपने समाज के अनुरूप लेकर आए थे। वहां वर्गों पर टिका समाज था, जिसमें स्वामी और दास के संबंध थे। वहां राज्य ही फैसला करता था कि समाज का हित किस में है। यहां जाति का समाज था और राजा जरूरी थे पर राजा और प्रजा के संबंध अंग्रेजों के अपने अनुभवों से बिल्कुल भिन्न थे। यहां समाज अपना हित स्वयं तय करता था और उसे अपनी शक्ति से, अपने संयोजन से पूरा करता था। राज उसमें सहायक होता था।

पानी का प्रबंध, उसकी चिंता हमारे समाज के कर्तव्य–बोध के विशाल सागर की एक बूंद थी। सागर और बूंद एक दूसरे से जुड़े थे। बूंदे अंग्रेजों को समाज के कर्तव्य–बोध का न तो विशाल सागर दिख पाया, न उसकी बूदें। उन्होंने अपने यहां के अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर यहां के राज में दस्तावेज जरूर खोजने की कोशिश की, लेकिन वैसे रिकार्ड राज में रखे नहीं जाते थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यहां सारी व्यवस्था उन्हीं को करनी है। यहां तो कुछ है ही नहीं!

देश के अनेक भागों में घूम फिर कर अंग्रेजों ने कुछ या काफी जानकारियां जरूर एकत्र कीं, लेकिन यह सारा अभ्यास कुतूहल से ज्यादा नहीं था। उसमें कर्तव्य के सागर और उसकी बूंदों को समझने की दृष्टि नहीं थी। इसलिए विपुल मात्रा में जानकारियां एकत्र करने के बाद भी जो नीतियां बनीं, उसने तो इस सागर और बूंद को अलग–अलग ही किया।

उत्कर्ष का दौरा भले ही बीत गया था, पर अंग्रेजों के बाद भी पतन का दौर प्रारंभ नहीं हुआ था। उन्नीसवीं सदी के अंत और तो और बीसवीं सदी के प्रारंभ तक अंग्रेज, यहां घूमते–फिरते जो कुछ देख रहे थे, लिख रहे थे, जो गजेटियर बना रहे थे, उनमें कई जगहों पर छोटे ही नहीं, बड़े–बड़े तालाबों पर चल रहे काम का उल्लेख मिलता है।

शहरों को पानी चाहिए पर पानी दे सकने वाले तालाब नहीं। तब पानी ट्यूबवैल से ही मिल सकता है पर इसके लिए बिजली, डीजल के साथ–साथ उसी शहर के नीचे पानी चाहिए। मद्रास जैसे कई शहरों का दुखद अनुभव यही बताता है कि लगातार गिरता जल–स्तर सिर्फ पैसे और सत्ता के बल पर थामा नहीं जा सकता। कुछ शहरों ने दूर बहने वाली किसी नदी से पानी उठा कर लाने के बेहद खर्चीले और अव्यावहारिक तरीके अपनाए हैं। लेकिन ऐसी नगर पालिकाओं पर करोड़ों रुपये के बिजली के बिल भी चढ़ चुके हैं।

मध्य प्रदेश के दुर्ग और राजनांदगांव जैसे क्षेत्रों में सन् 1907 तक भी 'बहुत से बड़े तालाब बन रहे थे।' इनमें तांदुला नामक तालाब 'ग्यारह वर्ष तक लगातार चले काम के बाद बन कर बस अभी तैयार हो हुआ था। इससे सिंचाई के लिए निकली नहरों–नालियों की लंबाई 513 मील थी।'

जो नायक समाज को टिकाए रखने के लिए यह सब काम करते थे, उनमें से कुछ के मन में समाज को डिगाने–हिलाने वाली नई व्यवस्था भला कैसे समा पाती? उनकी तरफ से अंग्रेजों को चुनौतियां भी मिलीं। सांसी, भील जैसी स्वाभिमानी जातियों को इसी टकराव के कारण अंग्रेजी राज ने ठग और अपराधी तक कहा। अब जब सब कुछ अंग्रेजों को ही करना था तो उसने पहले के पूरे ढांचे को टूटना ही था। उस ढांचे को दुतकारना, उसकी उपेक्षा करना कोई बहुत सोचा–विचारा गया कुटिल षड़यंत्र नहीं था। वह तो इस नई दृष्टि का सहज परिणाम था और दुर्भाग्य से यह नई दृष्टि हमारे समाज के उन लोगों तक को भा गई थी, जो पूरे मन से अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे और देश को आजाद करने के लिए लड़ रहे थे।

पिछले दौर के अभ्यस्त हाथ पर अकुशल कारीगरों में बदल दिए गए थे। ऐसे बहुत से लोग जो गुनीजनखाना यानी

गुणी माने गए जनों की सूची में थे, वे अब अनपढ़, असभ्य, अप्रशिक्षित माने जाने लगे। उस नए राज और उसके प्रकाश के कारण चमकी नई सामाजिक संस्थाएं, नए आंदोलन भी अपने ही नायकों के शिक्षण–प्रशिक्षण में अंग्रेजों से भी आगे बढ़ गए थे। आजादी के बाद की सरकारों, सामाजिक संस्थाओं तथा ज्यादातर आंदोलनों में भी यही लज्जाजनक प्रवृत्ति जारी रही है। उस गुणी समाज के हाथ से पानी का प्रबंध किस तरह छीना गया इसकी एक झलक तब के मैसूर राज में देखने मिलती है।

सन् 1800 में मैसूर राज दीवान पूर्णैया देखते थे। तब राज्य भर में 39,000 तालाब थे। कहा जाता था कि वहां किसी पहाड़ी की चोटी पर एक बूंद गिरे, आधी इस तरफ और आधी उस तरफ बहे तो दोनों तरफ इसे सहेजकर रखने वाले तालाब वहां मौजूद थे। समाज के अलावा राजा भी इन उम्दा तालाबों की देखरेख के लिए हर साल कुछ लाख रुपए लगाता था।

राज बदला। अंग्रेज आए। सबसे पहले उन्होंने इस 'फिजूलखर्ची' को रोका और सन् 1831 में राज की ओर से तालाबों के लिए दी जाने वाली राशि को काट कर एकदम आधा कर दिया। अगले 32 बरस तक नए राज की कंजूसी को समाज अपनी उदारता से ढ़क कर रखे रहा। तालाब लोगों के थे, सो राज से मिलने वाली मदद से कम हो जाने, कहीं–कहीं बंद हो जाने के बाद भी समाज तालाबों को संभाले रहा। बरसों पुरानी स्मृति ऐसे ही नहीं मिट जाती। लेकिन फिर 32 बरस बाद यानी सन् 1863 में वहां पहली बार पीडब्ल्यूडी बना और सारे तालाब लोगों से छीन कर उसे सौंप दिए गए।

प्रतिष्ठा पहले ही हर ली थी। फिर धन, साधन छीने और अब स्वामित्व भी ले लिया गया था। सम्मान, सुविधा और अधिकारों के बिना समाज लाचार होने लगता था। ऐसे में उससे सिर्फ अपने कर्तव्य निभाने की उम्मीद कैसे की जाती?

मैसूर के 39,000 तालाबों की दुर्दशा का किस्सा बहुत लंबा है। पीडब्ल्यूडी से काम नहीं चला तो फिर पहली बार सिंचाई विभाग बना। उसे तालाब सौंपे गए। वह भी कुछ नहीं कर पाया तो वापस पीडब्ल्यूडी को। अंग्रेज विभागों की अदला–बदली के बीच तालाबों से मिलने वाला राजस्व बढ़ाते गए और रख–रखाव की राशि छांटते–काटते गए। अंग्रेज इस काम के लिए चंदा तक मांगने लगे तो फिर जबरन वसूली तक चला गया।

इधर दिल्ली तालाबों की दुर्दशा की नई राजधानी बन चली थी। अंग्रेजों के आने से पहले तक यहां 350 तालाब थे। इन्हें भी राजस्व के लाभ–हानि की तराजू पर तौला गया और कमाई न दे पाने वाले तालाब राज के पलड़े से बाहर फेंक दिए गए।

उसी दौर में दिल्ली में नल लगने लगे थे। इसके विरोध की एक हल्की–सी सुरीली आवाज सन् 1900 के आसपास विवाहों के अवसर पर गाई जाने वाली 'गारियो', विवाह–गीतों में दिखी थी। बारात जब पंगत में बैठती तो स्त्रियां 'फिरंगी नल मत लगवाय दियो' गीत गातीं। लेकिन नल लगते गए और जगह–जगह बने तालाब, कुएं और बावड़ियों के बदले अंग्रेज, द्वारा नियंत्रित 'वाटर वर्क्स' से पानी आने लगा।

पहले सभी बड़े शहरों में और फिर धीरे–धीरे छोटे शहरों में भी यहीं स्वप्न साकार किया जाने लगा। पर केवल पाइप बिछाने और नल की टोंटी लगा देने से पानी नहीं आता। यह बात उस समय नहीं लेकिन आजादी के कुछ समय बाद धीरे–धीरे समझ में आने लगी थी। सन् 1970 के बाद तो यह डरावने सपने में बदलने लगी थी। तब तक कई शहरों के तालाब उपेक्षा की गाद से पट चुके थे और उन पर नए मोहल्ले, बाजार, स्टेडियम खड़े हो चुके थे। पर पानी अपना रास्ता नहीं भूलता। तालाब हथिया कर बनाए गए नए मोहल्लों में वर्षा के दिनों में पानी भर जाता है और फिर वर्षा बीती नहीं कि इन शहरों में जल संकट के बादल छाने लगते है।

जिन शहरों के पास फिलहाल थोड़ा पैसा है, थोड़ी ताकत है, वे किसी और के पानी की छीन कर अपने नलों को किसी तरह चला रहे हैं पर बाकी की हालत तो हर साल बिगड़ती ही जा रही है। कई शहरों के कलेक्टर फरवरी माह में आसपास के गांवों के बड़े तालाबों का पानी सिंचाई के कामों से रोक कर शहरों के लिए सुरक्षित कर लेते हैं।

शहरों को पानी चाहिए पर पानी दे सकने वाले तालाब नहीं। तब पानी ट्यूबवैल से ही मिल सकता है पर इसके लिए बिजली, डीजल के साथ–साथ उसी शहर के नीचे पानी चाहिए। मद्रास जैसे कई शहरों का दुखद अनुभव यही बताता है कि लगातार गिरता जल–स्तर सिर्फ पैसे और सत्ता के बल पर थामा नहीं जा सकता। कुछ शहरों ने दूर बहने वाली किसी नदी से पानी उठा कर लाने के बेहद खर्चीले और अव्यावहारिक तरीके अपनाए हैं। लेकिन ऐसी नगर पालिकाओं पर करोड़ों रुपये के बिजली के बिल भी चढ़ चुके हैं। ❑

(अनुपम मिश्र द्वारा लिखी उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ''आज भी खरे हैं तालाब'' के कुछ अंश)

रपट

देश की अर्थव्यवस्था का आधार भारतीय परिवार व्यवस्था : राममाधव

स्वदेशी संकल्पित परिवारों ने मनाया नव वर्ष अभिनन्दन उत्सव

भारत किसी समय सोने की चिड़िया कहलाता था, परन्तु वर्तमान में भ्रष्टाचार व भूखमरी की कगार पर खड़ा है। भारत देश एक कर्जदार देश बन गया है। ऋषियों एवं तपस्वियों की कर्मभूमि रहा भारत दुनिया में भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद के कारण चर्चा में है।

भीलवाड़ा : बीते माह 11 अप्रैल को स्वदेशी जागरण मंच द्वारा नव वर्ष प्रतिपदा पर संकल्पित परिवारों के महासंगम का आयोजन किया गया। नव वर्ष अभिनन्दन उत्सव पर भीलवाड़ा शहर के लगभग 1000 परिवारों के 2500 सदस्य उपस्थित रहे। समारोह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मीडिया व पब्लिक रिलेशन विभाग के राष्ट्रीय प्रभारी श्री राममाधव के आतिथ्य में उत्साह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

श्री राममाधव ने मुख्य वक्ता के रूप में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि भारत किसी समय सोने की चिड़िया कहलाता था, परन्तु वर्तमान में भ्रष्टाचार व भूखमरी की कगार पर खड़ा है। भारत देश एक कर्जदार देश बन गया है। ऋषियों एवं तपस्वियों की कर्मभूमि रहा भारत दुनिया में भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद के कारण चर्चा में है। राममाधव ने देश की वर्तमान स्थिति की चर्चा के साथ–साथ इसमें सुधार की नसीहतें भी दी। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता प्रतिष्ठान पर देश की दुर्दशा हेतु जिम्मेदार ठहराया।

श्री राममाधव ने स्वदेशी एवं राष्ट्रवादी विचारों को अपनाने का आव्हान् करते हुए देश की स्थिति एवं हालात सुधारने के लिये सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता बतायी। किसी समय हम विदेशों को अन्न का निर्यात करते थे, लेकिन गलत नीतियों के चलते आज हम अन्य देशों से अन्न का आयात कर रहे हैं।

श्री राममाधव ने नीति निर्धारकों पर बरसते हुऐ कहा कि 30 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। 30 प्रतिशत लोग गरीब हैं। 40 करोड़ लोग निरक्षर हैं, अपने हस्ताक्षर नहीं कर सकते। 35 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा के हालात ठीक नहीं है एवं ऐसा ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब संसद पर लोग कब्जा कर लेंगे।

30 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। 30 प्रतिशत लोग गरीब हैं। 40 करोड़ लोग निरक्षर हैं, अपने हस्ताक्षर नहीं कर सकते। 35 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा के हालात ठीक नहीं है एवं ऐसा ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब संसद पर लोग कब्जा कर लेंगे।

स्वदेशी जागरण मंच भीलवाड़ा के प्रवक्ता नीरज ठाकुर ने बताया कि राममाधव ने कहा कि हमें नववर्ष पर देश के चित्र को बदलने का संकल्प लेना होगा। हमें पुरूषार्थी बनना होगा। देश के लोगों में असीम व अनन्त शक्ति है परन्तु भारतीय नागरिक आलसी व स्वार्थी हो गए हैं। विवेकानन्द के विचारों एवं जीवन प्रसंगों का वर्णन करते हुए राममाधव ने कहा कि इन बुराईयों को छोड़कर देश में परिवर्तन लाना होगा, भविष्य का स्वप्न देखना होगा।

समारोह में राममाधव ने बताया कि अंग्रेज जब भारत छोड़कर गये तब भारत का सकल घरेलू उत्पाद 3 प्रतिषत था परन्तु वर्तमान में यह 1.7 प्रतिषत हो गया है, इसका जिम्मेदार कौन है? आज देश का प्रत्येक वर्ग शोषित है।

समारोह में मुख्य अतिथि राजस्थान टेक्सटाईल मिल्स एसोसिएशन के अध्यक्ष रतनलाल नौलखा ने स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों को अपनाने का आव्हान् किया।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन करते हुए तिवाड़ी प्रोसेसर्स के प्रबन्ध निदेशक विश्वेश्वर तिवारी ने उद्योगपतियों हेतु मार्गदर्शन करते हुए कहा कि हमें उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पाद तैयार करने होंगे जिससे हम विदेशी वस्तुओं एवं तकनीकी का मुकाबला कर सकेंगे।

कार्यक्रम में स्वदेशी जागरण मंच के राजस्थान प्रदेश संयोजक भागीरथ चौधरी व सी.एस. चेप्टर भीलवाड़ा के राजेन्द्र कुमार जैन विशिष्ट अतिथी रहे। मंच के प्रदेश सहसंयोजक डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी ने सभी अतिथियों का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। कैलाश जीनगर ने समारोह के अन्त में चलो उतारो आरती, भारत माँ ...... आरती का गायन किया, इस समय संकल्पित परिवारों के सभी सदस्यों

ने अपने हाथ में दीपक लेकर भारत माता की आरती की।

सांस्कृतिक एवं मंचीय कार्यक्रम : राममाधव के वक्तव्य से पूर्व भीलवाड़ा के अनेक विद्यालयों के विद्यार्थियों ने देश भक्ति गीत प्रस्तुत किये तो पाण्डाल कई बार करतल ध्वनि से गूंज उठा। मातृत्व गौरव एवं महिला सशक्तिकरण पर सुहानी जागेटिया के नेतृत्व में नाटिका का मंचन किया गया।

युवा अभिनन्दन उत्सव एवं मातृशक्ति अभिनन्दन उत्सव : राममाधव के मुख्य आतिथ्य में युवा अभिनन्दन एवं मातृशक्ति अभिनन्दन उत्सव का आयोजन किया गया। इन सत्रों में युवा एवं मातृशक्ति में नेतृत्व क्षमता का विकास कैसे किया जाये, इस विषय पर मंथन किया गया। युवाओं एवं महिलाओं ने इन सत्रों में शास्त्रीय कलाओं से सम्बन्धित प्रस्तुतियां भी दी गयी। इन सत्रों में डॉ. श्यामसुन्दर भट्ट, डॉ. रोशनलाल पीतलिया, शशिकला काबरा तथा रेखा सिंघलिया उपस्थित रहे। इन सत्रों का संचालन सी.ए. नवीन बागरेचा ने किया।

नववर्ष पर मंच की पद यात्रा : नववर्ष प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल मंच के कार्यकर्ताओं द्वारा शहर में एक प्रभात फेरी भी निकाली गयी।

(प्रस्तुति : नीरज ठाकुर)

चीनी घुसपैठ के खिलाफ मशाल जुलूस

दिनांक 3 मई 2013 : स्वदेशी जागरण मंच पटना ने चीन द्वारा 19 किलोमीटर भारतीय क्षेत्र पर कब्जा किए जाने के विरोध मे पूरे देश मे जनजागरण तथा चीनी वास्तुओ के बहिष्कार करने का निर्णय लिया है। इसी क्रम मे पटना के कारगिल चौक पर विशाल मशाल जुलूस का आयोजन संध्या 5 बजे किया गया। जो चीन के खिलाफ प्रदर्शन करते हुए मौर्या कॉप्लेक्स मे स्वामी विवेकानंद की प्रतिमा तक गई। जहाँ जुलूस आम सभा मे तब्दील हो गई तथा चीन के झंडे को जलाया गया तथा संकल्प लिया गया कि जब तक 1962 मे चीन द्वारा कब्जा किया गया 38000 वर्ग किलोमिटर का क्षेत्र छुड़ा नहीं लेते तब तक चीनी वस्तुओं के बहिष्कार का कार्यक्रम देशभर मे चलाया जाएगा।

इस अवसर पर मंच के राष्ट्रीय संयोजक अरुण ओझा ने प्रधानमंत्री के हास्यास्पद बयान की आलोचना करते हुए कहा की मनमोहन सिंह अभी तक के सबसे कमजोर प्रधानमंत्री साबित हुए है। एक तरफ जहा चीन हमारे बाजारो तथा सीमाओ पर घुसबैठ करता रहता है और हम उससे सुलह की बात करते है. ये सारी कायरता का प्रतीक है. उन्होने कहा इस देश की सरकार कमजोर हो सकती है पर इस की जनता तथा सेना स्वाभिमानी तथा बहादुर है. अब सरकार से कोई उम्मीद नही है. ऐशे मे जनता को जागृत कर चीनी वस्तुओ का बहिष्कार करना ही एकमात्र विकल्प है।

उन्होंने ने कहा की आज 40 प्रतिशत भारतीय बाजारो पर चीनी वस्तुओ का अधिपत्या हो गया है। ऐसे में भारतीय जनता द्वारा चीनी वस्तुओं के बहिष्कार से उसकी कमर टूट जाएगी और आज वह जिस मुनाफे और लाभ से हमारे ऊपर हमले की साजिश रचता है वह मुँह के बल गिर जाएगा।

इस अवसर पर स्वदेशी जागरण मंच के प्रांत सहसंयोजक मुकुल रंजन, महानगर संयोजक संजीव कुमार सिंह, चंदन कुमार, गोपाल कुमार, पंकज कुमार, शिवरंजन, मिथुन कुमार, सहित नीरज कुमार, गुंजन कुमार, प्रमोद कुमार चंद्रवंशी, रामविलास सांदिल्य सहित अखिल भारतीय विधार्थी परिषद, पर्यावरण भारती, किसान संघ, भारतीय मजदूर संघ, फिन्स, धर्म जागरण मंच के कई कार्यकर्ता तथा नेताओ ने भाग लिया और सभा को संबोधित किया।

(प्रस्तुति : मुकुल रंजन)